तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

शोधादर्श

रजत पुष्प

२५

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
मार्च १९९५

शोधादर्श

रजत पुष्प

२५

पुनरावलोकन परिशिष्ट १-२५

प्रकाशक :

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

मार्च १९९५

संस्थापक एवं आद्य सम्पादक : (स्व.) डा० ज्योति प्रसाद जैन
प्रबन्ध सम्पादक एवं प्रकाशक : श्री अजित प्रसाद जैन,
मन्त्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०,
पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ—२२६ ००४
सम्पादक मंडल : डा० शशि कान्त, श्री रमा कान्त जैन

★ विषय-सूची ★

१. गुरुगुण-कीर्तन : आचार्य अमृतचन्द्र सूरि —श्री रमा कान्त जैन १
२. जैन धर्म और संस्कृति —डा० ज्योति प्रसाद जैन ५
३. सम्पादकीय—पंच-कल्याणक प्रतिष्ठाएं —श्री अजित प्रसाद जैन १३
४. भगवान महावीर : दार्शनिक चिन्तन की नई दिशा
—डा० शशि कान्त २०
५. जैन धर्म बिकाऊ है ! —श्री कैलाश भूषण जिन्दल २२
६. विज्ञानवादी धर्म का अवैज्ञानिक रूपान्तरण —श्रीमती वासंती शाह २८
७. जैन समाज के समक्ष चुनौती —श्री राजेन्द्र कुमार जैन ३०
८. कवि छीहल और उनकी रचनायें —श्री वेद प्रकाश गर्ग ३४
९. शोध सारांश—आचार्य हेमचन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
—डा० (श्रीमती) अनिता श्रीवास्तव ३९
१०. Save Planet Through Eco-Jainism —श्री सुरेश जैन ४६
११. समणसुत्तं (हिंदी पद्यानुवाद) —श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास' ५०
१२. साहित्य सत्कार —श्री अजित प्रसाद जैन ५४
—श्री रमा कान्त जैन ५६
—डा० शशि कान्त ६१
१३. समाचार विमर्श : —श्री अजित प्रसाद जैन
सदाचार भारती का भ्रष्टाचार जाँच प्रकोष्ठ ६५
उपवास तपस्या का कीर्तिमान स्थापित ६५
एक और राष्ट्र संत हुए ६६
साहित्य सम्राट बने ६६
जैन एकता ६७
भगवान महावीर फाउन्डेशन ६७
आचार्य श्री का मोक्ष गमन ६७
गिरनार जी में लाडू मेले ७०
अभिनन्दन समाचार ७२
१४. बधाई ७६
१५. समाचार विविधा ७७

१६. शोक संवेदन ८०
१७. तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०
प्रगति प्रतिवेदन—१९९२-९५ ८१
१८. पाठकों की दृष्टि में ८४
१९. इस अंक के लेखक (iv)
२०. पुनरावलोकन शोधादर्श १-२५ ९५

मूल्य प्रति–१० रु०
वार्षिक–२५ रु०
आजीवन–२५० रु०

निवेदन

सुधि पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा उद्‌बोधन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

—सम्पादक मण्डल

आवश्यक सूचना

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक अप्रकाशित लेख आमन्त्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिए और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किया जाना चाहिए। लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की दो प्रतियां भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु शोधादर्श का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक सम्पादक को 'ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४' के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रमाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

—प्रबन्ध सम्पादक

मुद्रक : रत्न-ज्योति प्रेस, चारबाग, लखनऊ-४ (उ० प्र०)

इस अंक के लेखक

श्री अजित प्रसाद जैन : उप सचिव, उ० प्र० शासन (अ० प्रा०)
मंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ०प्र०
पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६ ००४

डा० ज्योति प्रसाद जैन(स्व.) : विश्व-विश्रुत विद्वान

श्री रमा कान्त जैन : उप सचिव, उ० प्र० शासन (अ० प्रा०)
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६ ००४

श्री कैलाश भूषण जिन्दल : आई० आर० एस० (अ० प्रा०), एडवोकेट
अजिताश्रम, गणेशगंज, लखनऊ-२२६ ०१८

श्रीमती वासंती शाह : सम्पादिका, ज्ञानशलाका
गंधकुटी, २१/६, कर्वे रोड, पुणे-४११ ००४

श्री राजेन्द्र कुमार जैन : सेक्रेटरी जनरल, एसोचेम
सी-१०७, इन्दिरा नगर, लखनऊ-२२६ ०१६

श्री वेद प्रकाश गर्ग : वयोवृद्ध साहित्यकार
१४, खटीकान, मुजफ्फरनगर-२५१ ००२

डा० (श्रीमती) अनिता श्रीवास्तव : बी-१०३, ओ० सी० आर० काम्प्लेक्स,
विधान सभा मार्ग, लखनऊ-२२६ ००१

श्री सुरेश जैन : आई० ए० एस०, निदेशक (गैस क्लेम्स),
मध्य प्रदेश शासन,
३०, निशात कालोनी, भोपाल-४६२ ००३

श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास' : १२-सी० डी०, आदर्श नगर, आलमबाग,
लखनऊ-२२६ ००५

डा० शशि कान्त : विशेष सचिव, उ० प्र० शासन, (अ० प्रा०)
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६ ००४

णाणंणरस्स सारं-सच्चं सारभूयं लोयम्मि

शोधादर्श-२५

वीर निर्वाण संवत् २५२५ मार्च १९९५ ई०

गुरुगुण-कीर्तन

आचार्य अमृतचन्द्र सूरि

श्रीमदमृतचन्द्रचंद्रिकोन्मीलितनेत्रोत्पलावलोकिताशेषाध्यात्म-तत्त्ववेदिना पद्मनन्दिमुनिना.....

—**पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका** पर रचित पद्मनन्दि व्रती की कन्नड टीका

भावार्थ—श्रीमद् अमृतचन्द्र रूपी चन्द्रमा की चन्द्रिका से विकसित हुए नेत्र कमलों से अवलोकित कर अशेष (सम्पूर्ण) अध्यात्म तत्त्व को जानने वाले पद्मनन्दि मुनि द्वारा (यह कृति रची गई)।

कुंदकुंदाचारिज प्रथम गाथाबद्ध करि,
समैसार नाटक विचारि नाम दयौ है।
ताहीकी परंपरा अमृतचन्द्र भये तिन,
संस्कृत कलस सम्हारि सुख लयौ है॥

—कविवर बनारसीदास रचित **समयसार नाटक** की ग्रन्थ समाप्ति और अन्तिम प्रशस्ति पद ८

भावार्थ—इसे पहले आचार्य कुन्दकुन्द ने प्राकृत भाषा में गाथाबद्ध किया और विचार कर इसका नाम **समयसार नाटक** रखा। फिर उन्हीं की परम्परा में अमृतचन्द्र हुए जो उसके संस्कृत भाषा में कलश रच कर प्रसन्न हुए।

श्रीवीरं कुन्दकुन्दञ्चामृतचन्द्र तथैव च ।
साष्टाङ्गं सादर भक्त्या प्रणमामि मुहुर्मुहुः ।।१।।
श्री कुन्दकुन्ददेवस्य, ग्रन्थ समयप्राभृतम् ।
आलाम्ब्य रचिता टीका, संस्कृतेऽमृतसूरिभिः ।।२।।
तट्टीकासदनं तेन, कलशैस्तु सुशोभितम् ।
मन्येऽथवामृतं तेन, कलशेषु समाहितम् ।।३।।

—पं० जगन्मोहनलाल सिद्धान्तशास्त्री कृत **अध्यात्म-अमृत-कलश** की ग्रन्थ प्रशस्ति

भावार्थ—श्री वीर प्रभु (वर्द्धमान महावीर स्वामी), कुन्दकुन्द और अमृतचन्द को साष्टाङ्ग सादर और भक्तिपूर्वक बार-बार प्रणाम करता हूँ । श्री कुन्दकुन्द देव के ग्रन्थ **समय प्राभृत** (**समय पाहुड**) का आलम्बन लेकर संस्कृत में अमृतचन्द्र सूरि द्वारा टीका रची गई । उस टीका रूपी सदन (महल) को उन्होंने कलशों (पद्यों) से इस प्रकार सुशोभित किया मानो उन्होंने उन कलशों में अमृत उड़ेल दिया हो ।

ऊपर जिन अमृतचन्द्र सूरि का सादर स्मरण किया गया है, उन्होंने आचार्य कुन्दकुन्द (ई०पू० ८ से ई० सन् ४४) के प्राकृत ग्रन्थ **समैसार पाहुड** (**समयसार प्राभृत**) पर संस्कृत में **आत्मख्याति टीका** और संस्कृत में स्वतन्त्र रूप से **समयसार कलश** (पद्य) की रचना की थी । साथ ही, आचार्य कुन्दकुन्द के **प्रवचनसार** पर **तत्त्वदीपिका टीका** तथा **पंचास्तिकायसंग्रह** पर **समय व्याख्या** अपरनाम **तत्त्वदीपिका टीका** भी रची । इनके अतिरिक्त संस्कृत में **तत्त्वार्थसार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय** तथा **लघुतत्त्वस्फोट** अपरनाम **शक्ति मणित कोश** नामक स्वतन्त्र कृतियों के रचयिता होने का श्रेय भी इन्हें दिया जाता है । प्राकृत में निबद्ध **श्रावकाचार** और **ढाढसी गाथा** का रचनाकार भी इन्हें बताया जाता है ।

इन निरभिमानी मनीषी ने अपनी टीका रचनाओं में अपने नाम अमृतचन्द्र सूरि के अतिरिक्त अपना कोई परिचय नहीं दिया है । **समयसार कलश** की समाप्ति भी निम्न श्लोक से की है—

स्वशक्ति संसूचितवस्तुतत्त्वैः व्याख्याकृतेयं समयस्य शब्दैः ।
स्वरूपगुप्तस्य न किञ्चिदस्ति कर्त्तव्यमेवामृतचन्द्र सूरेः ।।

तत्त्वार्थसार और **पुरुषार्थसिद्धयुपाय** में तो ग्रन्थकर्ता ने अपना नाम भी गुप्त रखा । **तत्त्वार्थसार** के अन्त में निबद्ध उनका श्लोक निम्नवत है—

वर्णाः पदानां कर्तारो, वाक्यानांतु पदावलिः ।
वाक्यानि चास्य शास्त्रस्य कर्तृणि पुनर्वयम् ।।

जिसका भावार्थ है कि पदों के कर्ता वर्ण हैं, वाक्यों के कर्ता पदों का समूह और वाक्यों से इस शास्त्र की रचना हुई है, तब फिर इस ग्रन्थ में हमारा कर्तृत्व कहां है ?

पुरुषार्थसिद्धयुपाय के अन्त में भी उन्होंने यही लिखा है कि विविध वर्णो से पदों की, पदों से वाक्यों की और वाक्यों से इस पवित्र शास्त्र की रचना हुई है, इसे हमने नहीं बनाया है ।

अमृतचन्द्र सूरि की कृतियां उनकी गुरु परम्परा, संघ का नाम और रचना काल आदि के विषय में भी मौन हैं । यद्यपि सूरि नामान्त प्रायः श्वेताम्बर आचार्य होते हैं, आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों पर उनकी टीकाओं और उनके ग्रन्थों में दिगम्बर आम्नाय सम्मत मान्यताओं को लक्ष्य कर विद्वान अमृतचन्द्र सूरि को दिगम्बराचार्य मानते हैं । कुछ लोग इन्हें काष्ठासंघ से सम्बन्धित रहे बतलाते हैं किन्तु काष्ठासंघ की पट्टावलियों में इस नाम के किसी आचार्य का उल्लेख मिलना नहीं बताया जाता हैं । नन्दिसंघ की पट्टावली में इनका पट्टारोहण काल विक्रम सम्वत् ९६२ (ईस्वी सन् ९०५) उल्लिखित बताया जाता है । पंडित आशाधर विक्रम संवत् १३०० अर्थात् १२४३ ईस्वी द्वारा अपने **अनगार धर्मामृत** में 'एतच्च विस्तरेण ठक्कुरामृतचन्द्रसूरिविरचितसमयसारटीकायां दृष्टव्यम्' द्वारा अमृतचन्द्र सूरि के नाम के पूर्व 'ठक्कुर' अर्थात् 'ठाकुर' विशेषण का प्रयोग किया बताया जाता है । 'ठाकुर' पद क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों के लिये समान रूप से प्रयुक्त होता रहा है । यह तो निश्चित रूप से विदित नहीं है कि अमृत चन्द्र सूरि क्षत्रिय थे या ब्राह्मण, किन्तु इससे इतना स्पष्ट है कि वे सम्मानित कुल में जन्मे थे ।

इनके समय के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं। बाह्य साक्ष्यों के आधार पर डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने इनका समय ईस्वी सन् की १० वीं शताब्दी का अन्तिम भाग अनुमानित किया है।[1] पं० जगन्मोहन लाल शास्त्री ने विक्रम संवत् ६६२ (ईस्वी सन् ६०५)[2] और डा० ज्योति प्रसाद जैन ने इन्हें आचार्य जयसेन रचित **धर्मरत्नाकर** (६६८ ई०), जिसमें **पुरुषार्थसिद्ध्युपाय** के अनेक पद्य उद्धृत हैं, और **उपासकाचार** व **सुभाषित रत्न संदोह** (६६३ ई०) के कर्ता आचार्य अमितगति द्वितीय से ही नहीं अपितु **योगसार प्राभृत** के कर्ता आचार्य अमितगति प्रथम (लगभग ६०० ईस्वी) से भी पूर्ववर्ती अनुमानित किया हैं।[3]

आचार्य अमृतचन्द्र सूरि को आचार्य कुन्दकुन्द की कृतियों को टीका रचकर प्रकाश में लाने का श्रेय है।

सन्दर्भ—

१- **तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा**, भाग २, पृ० ४०५

२- **अध्यात्म-अमृत-कलश**, आचार्य श्री अमृतचन्द्र सूरि का परिचय, पृ० ५६

३- **जैन-ज्योति: ऐतिहासिक व्यक्तिकोश**, प्रथम खण्ड, पृ० ६१

—रमा कान्त जैन

जैन धर्म और संस्कृति

—डा० ज्योति प्रसाद जैन

आदिपुराणकार आचार्य जिनसेन स्वामी (ज्ञात तिथि शाके ७५९ = ८३७ ई.) के अनुसार, 'इति आसीत्'—यहाँ ऐसा घटित हुआ— इस प्रकार की घटनावलि एवं कथानकों का निरूपण करने वाला साहित्य 'इतिहास', 'इतिवृत्त' या 'ऐतिह्य' कहलाता है, परम्परागत होने से वह 'आम्नाय', प्रमाण पुरुषों द्वारा कहा गया या निबद्ध हुआ होने से 'आर्ष', तत्त्वार्थ का निरूपक होने से 'सूक्त' और धर्म (हेयोपादेय विवेक अथवा पुण्य प्रवृत्तियों) का प्रतिपादक एवं पोषक होने के कारण 'धर्मशास्त्र' कहलाता है।[1] इस प्रकार इस परिभाषा में इतिहास का तत्त्व, प्रकृति, तथा उसके राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सभी अंगों का समावेश हो जाता है। आज इतिहास का जो विशद व्यापक अर्थ ग्रहण किया जाता है, उक्त पुरातन जैनाचार्य को भी वह अभिप्रेत था।

इतिहास, विशेषकर प्राचीन भारतीय इतिहास, का आशय भारतीय संस्कृति का यथासम्भव सर्वांग इतिहास है, जिसके अन्तर्गत विवक्षित युग में देश में प्रचलित विभिन्न धर्मों, दर्शनों, समुदायों तथा तत्तद संस्कृतियों, साहित्य-कला, आचार-विचार, लोक-जीवन आदि के विकास का इतिहास समाविष्ट होता है।

जैन संस्कृति भारतवर्ष की सुदूर अतीत से चली आई, पूर्णतया देशज एवं पर्याप्त महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक धारा है। उसके सम्यक् ज्ञान के बिना भारतीय संस्कृति के इतिहास का ज्ञान अधूरा-अपूर्ण रहता है।

'जयतीति जिनः' व्युत्पत्ति के अनुसार सर्व प्रकार के आत्मिक-मानसिक विकारों पर पूर्ण विजय प्राप्त करके इसी जीवन में परम प्राप्तव्य को प्राप्त करने वाले 'परमात्मा', 'जिन' या 'जिनेन्द्र' कहलाते हैं। वन्दनीय, पूजनीय एवं उपासनीय होने के कारण वे अर्हंत् या 'अरहंत', दुःखपूर्ण संसार सागर को पार करने के हेतु कल्याणप्रद धर्म-तीर्थ का प्रवर्त्तन करने के कारण 'तीर्थंकर', समस्त अन्तर एवं बाह्य परिग्रह से मुक्त होने के कारण 'निर्ग्रन्थ' और स्वपुरुषार्थ द्वारा श्रमपूर्वक समत्व की साधना एवं आत्मशोधन करने के कारण 'श्रमण' कहलाते हैं। उन्हीं ऋषभादि-महावीर पर्यन्त चौबीस निर्ग्रंथ-श्रमण-अर्हत्-केवलि-जिन

तीर्थंकरों द्वारा स्वयं जानी गई, अनुभव की गई, आचरण की गई और बिना किसी भेदभाव के 'सर्वसत्वानां हिताय, सर्वसत्वानां सुखाय' उपदेशित एवं प्रचारित धर्मव्यवस्था का ही नाम जैनधर्म है। उनके अनुयायी जैन या जैनी, श्रमणोपासक अथवा श्रावक भी कहलाते हैं। इन अहिंसा एवं निवृत्ति प्रधान परम्परा द्वारा पल्लवित-पोषित संस्कृति ही जैन संस्कृति है।

प्राचीनता

इस परम्परा के मूलस्रोत प्राग्ऐतिहासिक पाषाण एवं धातु-पाषाण-युगीन आदिम मानव सभ्यताओं की जीववाद (animism) प्रभृति मान्यताओं में खोजे गए हैं। सिन्धु उपत्यका में जिस धातु-लौह-युगीन प्राग्ऐतिहासिक नागरिक सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं उसके अध्ययन से एक सम्भावित निष्कर्ष यह निकाला गया है कि उस काल और क्षेत्र में वृषभ-लांछन दिगम्बर योगिराज ऋषभ की पूजा-उपासना प्रचलित थी। उक्त सिन्धु सभ्यता को प्राग्वैदिक एवं अनार्य ही नहीं अपितु प्रागार्य भी मान्य किया जाता है, और इसी कारण सुविधा के लिए उसे बहुधा द्राविड़ीय संस्कृति संज्ञा दी जाती है। वैदिक परम्परा के आद्यग्रन्थ स्वयं **ऋग्वेद** में अनेक स्थलों पर ऋषभदेव के आदर पूर्वक प्रत्यक्ष तथा परोक्ष उल्लेख हुए हैं। स्पष्ट नामोल्लेखों के अतिरिक्त, वैदिक संहिताओं के अर्हत्, केशी, व्रात्य, वातरशना, मुनि आदि शब्द ऋषभ के लिए ही प्रयुक्त हुए प्रतीत होते हैं, ऋत्, सत्य, अहिंसा, सदाचार आदि शब्द उनकी विशिष्ट मान्यताओं या प्रस्थापनाओं के सूचक हैं, और श्रमण, मुनि, यति आदि शब्द उनके अनुसर्ताओं के। वैदिक उल्लेखों एवं संकेतों का विशदीकरण तथा स्पष्टीकरण पुराण ग्रन्थों में किया गया माना जाता है, और **भागवत्, विष्णु, मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड** आदि प्रमुख पुराणों में परमेश्वर के अष्टम अवतार के रूप में जिन नाभेय ऋषभदेव का वर्णन हुआ है वह **ऋग्वेद** आदि में उल्लिखित ऋषभ ही हैं, इस विषय में प्रायः कोई सन्देह नहीं किया जाता। इन वर्णनों में और जैन पौराणिक अनुश्रुतियों में उपलब्ध प्रथम तीर्थंकर आदिदेव नाभिसुत ऋषभ के वर्णनों में ऐसा अद्भुत सादृश्य है जो इस तथ्य को असंदिग्ध बना देता है कि दोनों ही परम्पराओं में अभिप्रेत पुराणपुरुष ऋषभ एक व्यक्ति हैं, जो अन्तर है वह इतना ही है कि प्रत्येक परम्परा ने उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को अपने-अपने रंग में रंगने का प्रयत्न किया है।[2]

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

पाषाणकालीन प्रकृत्याश्रित असभ्य युग (भोगभूमि) का अन्त करके ज्ञान-विज्ञान संयुक्त कर्मप्रधान मानवी सभ्यता का जनक इन आदि तीर्थंकर ऋषभदेव को ही माना जाता है। उनका ज्येष्ठ पुत्र भरत ही इस देश का सर्वप्रथम चक्रवर्ती सम्राट था और इसी के नाम पर यह देश 'भारत' या 'भारतवर्ष' कहलाया, यह जैन पौराणिक अनुश्रुति वैदिक साहित्य एवं ब्राह्मणीय पुराणों से समर्थित है।[3] ऋषभ के उपरान्त समय-समय पर २३ अन्य तीर्थंकर हुए जिन्होंने उनके सदाचार-प्रधान योगधर्म का पुनः प्रचार किया और जैन संस्कृति का पोषण किया। बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के तीर्थ में अयोध्यापति रामचन्द्र हुए जिन्होंने श्रमण-ब्राह्मण उभय संस्कृतियों के समन्वय का भगीरथ प्रयत्न किया, एतदर्थ वे दोनों परम्पराओं में परमात्मरूप में उपास्य हुए।[4] इक्कीसवें तीर्थंकर नमि विदेह के जनकों के पूर्वज मिथिला नरेश थे जो उस आध्यात्मिक परम्परा के सम्भवतया आद्य प्रस्तोता थे, जिसने जनकों के प्रश्रय में औपनिषदिक आत्म-विद्या के रूप में विकास किया।[5] बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) नारायण कृष्ण के ताऊजात भाई थे। दोनों ही जैन परम्परा के शलाकापुरुष हैं। दोनों ही भारतयुद्ध के समसामयिक ऐतिहासिक नरपुंगव हैं। अरिष्टनेमि ने श्रमणधर्म पुनरुत्थान का नेतृत्व किया तो कृष्ण ने उभय परम्पराओं के समन्वय का स्तुत्य प्रस्तुत किया।[6] तेइसवें तीर्थंकर पार्श्व (८७७-७७७ ई० पू०) काशी के उरगवंशी क्षत्रिय राजकुमार और श्रमण धर्म पुनरुत्थान आन्दोलन के सर्व-महान् नेता थे, सम्भवतया इसी कारण अनेक आधुनिक इतिहासकारों ने तीर्थंकर पार्श्व को ही जैनधर्म का प्रवर्तक मान लिया। इसमें सन्देह नहीं कि पार्श्व अपने समय के सर्वमान्य महापुरुष थे। उनका चातुर्याम धर्म प्रसिद्ध है।[7] अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर, बौद्ध साहित्य में जिनका निगंठनातपुत्त (निर्ग्रंथ ज्ञातृपुत्र) के नाम से उल्लेख हुआ है, का जीवन काल ५९९-५२७ ई. पूर्व है। बुद्ध प्रभृति महामानवों के उस महायुग में उत्पन्न महामानव महावीर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। श्रमण पुनरुत्थान आन्दोलन पूर्णतया निष्पन्न हुआ, इसका अधिकांश श्रेय महावीर को है। संघ का पुनर्गठन करके जैनधर्म को जो रूप उन्होंने प्रदान किया वही गत अढ़ाई सहस्र वर्षों के जैन संस्कृति के विकास के इतिहास का मूलाधार है।[8]

महावीर के निर्वाणोपरान्त उनकी शिष्य परम्परा के साधु-साध्वियों ने उनके सन्देश को देश के कोने-कोने में पहुँचाया। उसकी आठवीं पीढ़ी में श्रुत-केवलि भद्रबाहु के समय पर्यन्त महावीर का संघ प्रायः अविच्छिन्न बना रहा, किन्तु द्वादशवर्षीय भीषण दुर्भिक्ष के कारण उक्त आचार्य संघ के एक बड़े भाग सहित दक्षिणापथ को विहार कर गए जहाँ कर्णाटक आदि विभिन्न प्रदेशों में जैनधर्म के अनेक नवीन केन्द्र विकसित हुए। भद्रबाहु के आम्नाय-शिष्य मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त ने गुरु का अनुगमन करके कर्णाटक देशस्थ कटवप्र नामक पर्वत पर अन्तिम जीवन एक जैन मुनि के रूप में व्यतीत किया।[9]

दुष्काल की अवधि में जो साधु उत्तरापथ में ही बने रहे, वे स्वभावतः शिथिलाचार से अपनी रक्षा न कर सके। मालवा, गुजरात प्रभृति पश्चिमीय प्रदेश उनके केन्द्र बने। आचार-विचार की दृष्टि से इन दक्षिणी और पश्चिमी शाखाओं के बीच मतभेद की खाई बढ़ती गई, जिसने कालान्तर में (प्रथम शती ई. के अन्तिम पाद में) दिगम्बर-श्वेताम्बर सम्प्रदाय भेद को जन्म दिया। एक तीसरी शाखा का केन्द्र शूरसेन देश की महानगरी मथुरा रही जो विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों एवं जातियों का भी चिरकाल तक महत्त्वपूर्ण संगम-स्थल बनी रही। मथुरा के जैनसंघ ने उपर्युक्त दोनों शाखाओं के बीच समन्वय करने के स्तुत्य प्रयत्न किये। उन्होंने उस महान् सरस्वती आन्दोलन का नेतृत्व एवं प्रचार किया जिसके फलस्वरूप गुरु-शिष्य परम्परा में मौखिक द्वार से संरक्षित एवं प्रवाहित द्वादशांगश्रुत रूप जिनागम के महत्त्वपूर्ण अंशों का पुस्तकीकरण तथा पुस्तक-साहित्य प्रणयन का प्रवर्तन हुआ।[10] तदन्तर दिगम्बर एवं श्वेताम्बर, उभय सम्प्रदाओं का स्वतन्त्र विकास प्रारम्भ हुआ, संघभेद होते रहे, नये-नये सम्प्रदाय-उपसम्प्रदाय बनते रहे, आचार-विचार में भी देश-कालानुसार परिवर्तन होते रहे। जैन संस्कृति का सर्वतोमुखी संवर्द्धन होता रहा। कभी-कभी और कहीं-कहीं पर्याप्त उत्थान अथवा पतन भी हुए। प्रमुख राज्याश्रय एवं जनसामान्य का समर्थन प्राप्त हुआ तो साम्प्रदायिक विद्वेष और अत्याचार का शिकार भी होना पड़ा। प्रथम-द्वितीय शताब्दी ईस्वी से लेकर प्रायः अठारहवीं शताब्दी पर्यन्त उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में जैनधर्म का विशेष उत्कर्ष एवं प्रभाव रहा। यों, राजस्थान के विभिन्न राज्य, मध्यभारत, विदर्भ, गुजरात और कर्णाटक जैन संस्कृति के प्रमुख गढ़ रहे हैं। देश के प्रायः प्रत्येक नगर,

राजधानी, शासन केन्द्र, व्यापार एवं व्यवसाय केन्द्र में इस धर्म के अनुयायी सदैव अल्पाधिक संख्या में पाए जाते रहे हैं। अपनी शिक्षा-दीक्षा एवं सामान्य समृद्धि के कारण वे धर्म, दर्शन, ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, कला, आचार-विचार, प्राय: सभी क्षेत्रों में अपनी स्पृहणीय सांस्कृतिक बपौती के सफल संरक्षक रहे हैं। संपूर्ण देश की भावात्मक एकता के संपादन में, वर्तमान युग के स्वातन्त्र्य संग्राम में तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्र के नवनिर्माण में उनका यथोचित एवं महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

प्रमुख विशेषताएँ

जैन तत्त्वज्ञान यथार्थवादी है। वह विश्व के समस्त इन्द्रियगोचर अथवा अगोचर पदार्थों की सत्ता को स्वीकार करता है और उनका विशद एवं वैज्ञानिक विश्लेषण तथा निरूपण करता है।

जैन कर्म-सिद्धान्त नियतिवाद का निषेध करता है—भाग्य, दैव अथवा ईश्वर के आसरे हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहने को मूर्खता घोषित करता है, पुरुषार्थ एवं आत्मनिर्भरता के महत्त्व को प्रदर्शित करता है, तथा स्फूर्तिदायक आत्मविश्वास, इच्छाशक्ति एवं मनोबल को पुष्ट करता है।

सुविकसित जैन न्यायशास्त्र से परिपुष्ट जैन न्यायदर्शन भारतीय न्याय-शास्त्र का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसने जैन सिद्धान्त को मात्र आज्ञा-प्रधान होने के स्थान पर परीक्षा-प्रधान एवं बुद्धिगम्य बना दिया है।

जैन अध्यात्म रहस्यवादात्मक आदर्शवाद पर आधारित है। उसमें शुद्ध आत्मतत्त्व की उपादेयता एवं उसकी अनुभूति के लोकोत्तरीय परमानन्द का अत्यन्त सरस एवं आकर्षक व्याख्यान है। उस अलौकिक ब्रह्मानन्द का रसपान करने के लिए वह मुमुक्षुजनों को सहज प्रेरणा प्रदान करता है।

इन्द्रिय एवं प्राणी संयम पर आधारित अहिंसा-प्रधान जैनाचार व्यक्ति और समाज, दोनों के ही सर्वाधिक कल्याण का सर्वोत्तम मार्ग है। वह एक अत्युच्च सुविकसित मानव संस्कृति का प्रतीक है। व्यक्ति के लिए वह विवेकपूर्ण दृष्टि-कोण, अहिंसात्मक आचार-विचार, आत्मविश्वास, विचार-स्वातन्त्र्य, शरीर-साधना एवं आत्मसंयम पर बल देता है और उसे धर्माचरण में निरन्तर यथा-शक्ति उपयोगी बने रहने की प्रेरणा देता है। व्यक्ति का अन्तर्मुखी एवं व्यवस्थित जीवन ही समष्टि के कल्याण और सामूहिक शान्ति का अमोघ उपाय है।

कृत्रिम उपायों और स्वार्थ प्रसूत योजनाओं से शान्ति स्थापित नहीं होती। अहिंसा और अपरिग्रह ही विश्व शान्ति के जनक हैं।

यह धर्म वर्गविशेष का न होकर प्राणीमात्र का समानभाव से कल्याणकारी है। आत्मा सत्य है, उसी में सौन्दर्य है और वह सौन्दर्य ही शिव का परिचायक है, अतः सत्यं-शिवं-सुन्दरं रूप आत्मतत्त्व की उपलब्धि तथा अनुभूति में ही व्यक्ति और समष्टि का कल्याण निहित है। अर्हन्त आदि जो महान् आत्माएं इस प्रयास में सफल होकर परमेष्ठी पद को प्राप्त हो गई हैं, आदर्श बन गई हैं– उस आदर्श अवस्था को स्वयं प्राप्त करने के लिए ही उन आदर्श पुरुषों की पूजा उपासना, गुणानुवाद, ध्यान आदि की व्यवस्था जैन क्रियाकाण्ड एवं धार्मिक अनुष्ठानों में की गयी है। आत्मशोधन के अर्थ स्वाध्याय, सामायिक, दान, व्रत, तप (उपवास आदि) का यम-नियम रूप से करने का विधान है। जैन संस्कृति का साध्य मोक्ष होने के कारण उसकी बाह्य प्रवृत्तियाँ भी निवृत्तिमूलक ही हैं। यही कारण है कि उसके साहित्य और कला में भी मुख्यतया शान्तरस ही प्रवाहित हुआ है।

जैनदर्शन की सर्वोपरि विशेषता उसका स्याद्वाद सिद्धान्त है। अनेकान्त अथवा स्याद्वाद पदार्थों पर सब ही संभव दृष्टि-विन्दुओं से विचार करता है और दूसरों के विचारों का आदर करना तथा उनके प्रति सहिष्णुता सिखाता है। कैसा भी विरोधी हो उसके विचारों के साथ में एक स्याद्वादी शान्तिपूर्वक समन्वय एवं सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करता है। सभी के मत में कुछ न कुछ सत्य निहित है, यदि उसे उपयुक्त दृष्टिकोण से देखा जाय। विवाद की जड़ तो यह कदाग्रह है कि मैं ही सर्वथा ठीक हूँ, अन्य सब गलत हैं। यह मनोवृत्ति ही एकान्त है, और अनेकान्त उसका निरसन करता है। अनेकान्तिक मनोवृत्ति ही विश्व में शान्ति, मैत्री, सहयोग एवं सद्भाव स्थापित करने में समर्थ हो सकती है। इतिहास साक्षी है कि जैन धर्मानुयायियों ने जिनमें बड़े बड़े शक्तिशाली सम्राट एवं नरेश भी हुए हैं, और कहीं-कहीं बहुभाग जनसाधारण भी रहे हैं, कभी भी किसी अन्य धर्म पर अत्याचार नहीं किया, यद्यपि उसे स्वयं कतिपय विरोधियों के नृशंस अत्याचारों का कई बार शिकार होना पड़ा। वस्तुतः शान्तिप्रियता एवं सहिष्णुता जैनधर्म की महान विशेषताएँ रही हैं और उनका मुख्य कारण सप्तभंगी न्यायाश्रित अनेकान्तात्मक स्याद्वाद है। यह सिद्धान्त

चार्वाक के थोथे यथार्थवाद और नैयायिकों के लचर आदर्शवाद, दोनों से ही बच कर चला है। प्रो. ध्रुव के अनुसार 'स्याद्वाद ऐसा काल्पनिक सिद्धान्त मात्र नहीं है जिसका प्रणयन किसी तात्त्विक समस्या का हल करने के लिए किया गया हो, अपितु, उसका सम्बन्ध मनुष्य के वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक जीवन से है। स्याद्वाद में तो विरोधी स्वरों का ऐसा सुन्दर समन्वय हुआ है कि उससे एक पूर्ण समन्वित स्वरलहरी गूँज उठती है।' और डॉ. ए. एन. उपाध्ये का कथन है कि "स्याद्वाद का लक्ष्य आधुनिक दार्शनिक चिन्तन के क्षेत्र के सर्वथा अनुरूप है। स्याद्वाद का लक्ष्य वैयक्तिक दृष्टियों का एकीकरण, समीकरण, समन्वय तथा संश्लेषण करके उन्हें एक व्यवहारिक पूर्णता प्रदान करना है। यह दार्शनिक को एक सार्वभौमिक दृष्टि प्रदान करता हैं और उसे निश्चय करा देता है कि सत्य के ऊपर अपनी-अपनी परिधि में सीमित भिन्न नामधारी मत-मतान्तरों मे किसी का भी एकाधिपत्य नहीं है। धर्म-मुमुक्षु को यह एक ऐसी बौद्धिक सहिष्णुता प्रदान करता है जो अहिंसा सिद्धान्त के सर्वथा अनुरूप है जिसकी पुष्टि जैनधर्म सहस्रों वर्षों से निरन्तर करता चला आ रहा है।"

जहाँ तक भारतीय दार्शनिक चिन्तन में जैन दर्शन के स्थान का प्रश्न है, महामहोपाध्याय डॉ. गंगानाथ झा का कहना है कि 'निस्संदेह कतिपय सिद्धान्तों में जैन दर्शन का बौद्ध, वेदांत, सांख्य-न्याय और वैशेषिक दर्शनों के साथ साम्य है, किन्तु इस तथ्य से जैन दर्शन का स्वतन्त्र अस्तित्व, उदय और विकास असिद्ध नहीं होते। यदि कतिपय भारतीय दर्शनों के साथ उसका कुछ सादृश्य भी है तो साथ ही उसकी अपनी भी निराली विशेषताएं तथा उन दर्शनों से स्पष्ट मौलिक भेद भी हैं।' प्रो. जी. सत्यनारायण मूर्ति के शब्दों में 'जैन धर्म के कुछ सिद्धान्त उसके अपने विशिष्ट तथा निराले हैं और वे उस पर एक स्वतन्त्र स्वाधीन अस्तित्व की छाप छोड़ते हैं।' चिन्ताहरण चक्रवर्ती का कथन है कि 'यद्यपि अपने वर्तमान ज्ञान के आधार पर हमारे लिए जैन और ब्राह्मण धर्मो से सम्बन्धित अनेक बातों की आपेक्षिक प्राचीनता को निश्चित करना सम्भव नहीं है तथापि जैन धर्म की यथार्थवादिता एवं बुद्धिवादिता एक सामान्य दृष्टा का भी ध्यान आकर्षित करने से नहीं चूकती।' अन्त में, डॉ. हर्मन जेकोबी के शब्दों में, 'मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि जिन धर्म अन्य सब धर्मो से सर्वथा विलक्षण एवं स्वतन्त्र मौलिक धर्म है और इसी कारण प्राचीन भारत के दार्शनिक चिन्तन तथा धार्मिक जीवन का अध्ययन करने के लिए उसका प्रभूत महत्त्व है।'

इस प्रकार, भारत की प्राचीन श्रमण संस्कृति तथा अध्यात्म प्रधान महान् मागध धर्म के सजीव, सतेज प्रतिनिधि के रूप में जैन-धर्म जैन-दर्शन और जैन-संस्कृति का भारतीय धर्मों, दर्शनों और संस्कृतियों में ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण विश्व के दार्शनिक चिन्तन, धार्मिक इतिहास एवं सांस्कृतिक विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। दूसरी शती ईस्वी के आचार्य समन्तभद्र के शब्दों में 'महावीर प्रभृति श्रमण तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित एवं प्रचारित यह सर्वोदय तीर्थ, मानवमात्र का उन्नायक एवं कल्याणकर्ता है।'

सन्दर्भ—

१. इतिहास इतीष्टं तद् इतिहासीदिति श्रुतेः।
इतिवृत्तमथैतिह्यमाम्नायञ्चमनन्ति तत् ॥ २४ ॥
ऋषिप्रणीतमार्षंस्यात् सूक्तं सुनृतशासनात्।
धर्मानुशासनाच्चेदं धर्मशास्त्रमिति स्मृतम् ॥ २५ ॥—**आदिपुराण**, सर्ग १

२. देखिए—डॉ० हीरालाल जैन—**भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान**, पृ० ११-१६; डॉ० ज्योति प्रसाद जैन—Jainism : The Oldest Living Religion, पृ० ४०-४६, तथा **भारतीय इतिहास : एक दृष्टि** (द्वि० सं०), पृ० २१-२६

३. वही, पृ० २४; स्वामी कर्मानन्द—**भारत का आदि सम्राट**, तथा **भरत और भारत**

४. **भारतीय इतिहास : एक दृष्टि**, पृ० ३२

५. डॉ० हीरालाल जैन, वही, पृ० १६-२०

६. **भारतीय इतिहास : एक दृष्टि**; पृ० ३३, ४२-४५

७. देखिए—डा० ज्योति प्रसाद जैन, 'Revival of Sramanadharma in Later Vedic Age' (Jain Journal, १६७१-७२), **भारतीय इतिहास : एक दृष्टि**, पृ० ४५-५०

८. **भारतीय इतिहास : एक दृष्टि**, पृ० ५०, ५४-५६

९. वही, पृ० ८८-८६

१०. डॉ० ज्योति प्रसाद जैन—The Jaina Sources of the History of Ancient India, पृ० १००-११६ ★

सम्पादकीय

पंच-कल्याणक प्रतिष्ठाएँ

धार्मिक उत्सवों व पूजा विधानों को धर्म प्रभावना (?) के प्रयोजन से विशेष वैभव प्रदर्शन के साथ मनाने के लिए प्रसिद्ध दिगम्बर जैन समाज में न्यूनाधिक दो दर्जन पंच-कल्याणक प्रतिष्ठाओं तथा अन्य राष्ट्रीय स्तर के महामहोत्सवों का आयोजन देश के विभिन्न अंचलों में प्रतिवर्ष होता रहता है जिनमें सामान्यतया दस लाख से लेकर करोड़ों रुपये का आय-व्यय होता है। इस वर्ष अभी मई तक भी बीस स्थानों पर अन्य कार्यक्रमों सहित पंच-कल्याणक महोत्सवों के आयोजन के समाचार प्राप्त हुए हैं। ये हैं—अयोध्या, श्रावस्ती, सोनागिर **त्रय गजरथ** सहित, श्री सम्मेद शिखर जी, मंगलगिरि (सागर) **पंच गजरथ** सहित, पोदनपुर (बम्बई), धर्मस्थल (कर्नाटक) भगवान बाहुबलि महामस्तकाभिषेक सहित, जयपुर, मेरठ, दिल्ली, खतौली, आष्टा (भोपाल) **गजरथ सहित**, जल्पा (टीकमगढ़), अहमदाबाद, कापड़ना (धूलिया, महा०), झलारा (उदयपुर), रजवास (म० प्र०), केकड़ी (राजस्थान), सागवाड़ा, भुसावल।

श्री अयोध्या जी तीर्थ क्षेत्र पर गत वर्ष भी आर्यिका-रत्न ज्ञानमती माता जी के सानिध्य में उन्हीं की प्रेरणा से निर्मित तीन-चौबीसी मन्दिर तथा समवशरण मन्दिर की मूर्तियों की पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा विशाल स्तर पर हुई थी। पर इन दोनों मन्दिरों का कुछ निर्माण कार्य अधूरा रह गया था जो अब पूरा हो गया है। कुछ प्रतिमाओं का निर्माण भी शेष रह गया था। इस वर्ष शेष प्रतिमाओं की पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा के साथ दोनों नवनिर्मित मन्दिरों के शिखरों पर कलशारोहण का कार्यक्रम भी सम्पन्न किया गया। इन दोनों वर्षों के पंचकल्याणकों की विशेष उपलब्धियाँ हैं—डा० राम मनोहर लोहिया विश्व-विद्यालय, फैजाबाद, द्वारा पू० गणिनी आर्यिका-रत्न ज्ञानमती जी को जैन धर्म, दर्शन एवं साहित्य द्वारा लोक सेवा के क्षेत्र में विशेष योगदान के लिए डी० लिट्० की मानद उपाधि प्रदान किया जाना, उक्त विश्वविद्यालय में भगवान ऋषभदेव जैनपीठ का शिलान्यास एवं मुख्य मंत्री जी, उत्तर प्रदेश, द्वारा पीठ के लिए २५ लाख रुपये के अनुदान की घोषणा तथा राजघाट स्थित भगवान अनन्तनाथ

के चरण मन्दिर के निकट नगरपालिका अयोध्या द्वारा विकसित किए गए उद्यान का नामकरण "भगवान ऋषभदेव उद्यान" किया जाना तथा उसमें भगवान ऋषभदेव की उत्तुंग पद्मासनस्थ मूर्ति स्थापित किया जाना । किसी जैन साध्वी की साहित्यिक साधना एवं कृतित्व का इस प्रकार सार्वजनिक स्वीकृति प्राप्त करना समस्त जैन समाज के लिए गौरवास्पद है । हम इन उपलब्धियों के लिए आर्यिका जी का अभिनन्दन करते हैं ।

श्री सोनागिर सिद्ध क्षेत्र पर जैन विश्वविद्यालय के लिए अर्थ संग्रह के विशेष प्रयोजन से सिंह रथ प्रवर्तन के अद्भुत आकर्षण के साथ गत वर्ष भी पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ था । आयोजकगण अपने प्रयोजन में बहुत अंश तक सफल रहे तथा विश्वविद्यालय के लिए एक करोड़ रुपये से अधिक की प्राप्ति हो गई बताई गई है । इस वर्ष नवनिर्मित नंग-अनंग परमागम मन्दिर के लिए पंच-कल्याणक किया गया है तथा गत वर्ष के सिंह रथ के स्थान में **त्रय गजरथ** प्रवर्तन से ही सन्तोष किया गया है ।

श्री क्षेत्र धर्मस्थल (कर्नाटक) के धर्माधिकारी श्री वीरेन्द्र हैगडे ने अपनी मातुश्री की प्रेरणा से रत्नगिरि पहाड़ी पर एक शिलाखंड को तराश कर निर्मित की गई भगवान बाहुबलि की ३९ फुट ऊंची प्रतिमा को सन् १९८२ में प्रतिष्ठापित कराया था । दक्षिण की इस दूसरी सबसे बड़ी भगवान बाहुबलि की प्रतिमा से श्री क्षेत्र धर्मस्थल एक जैन तीर्थ-क्षेत्र के रुप में भी विख्यात हो गया है । इस भव्य प्रतिमा का प्रथम द्वादशवर्षीय महामस्तकाभिषेक पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा सहित दिनांक १० फरवरी को सम्पन्न हुआ जिसमें एक लाख से अधिक श्रद्धालुओं ने भाग लिया । इसमें १०० कि०ग्रा० नारियल जल, १०० कि०ग्रा० गन्ने का रस, ३०० लीटर दूध, २५ किलो चावल का आटा, १०० किलो सुगन्धित लेप, ३० किलो चन्दन पूर्ण तथा १०० किलो अष्ट गंध लेप, प्रयुक्त किया गया। इस धर्मोत्सव की पूरी देख-रेख आचार्य वर्धमान सागर द्वारा की गई । इस सुअवसर पर आचार्य वर्धमान सागर म० के सानिध्य में श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा के शताब्दी समारोह का भी शुभारम्भ किया गया ।

सागर में वेदान्ती नगर के निकट **मंगलगिरि** का ११ फुट ३ इंच ऊंची भगवान महावीर की ६ टन की पीतल की मूर्ति की प्रतिष्ठा पंच-कल्याणक पूजा **पंचगजरथ सहित** करके एक नवीन क्षेत्र के रूप में विकास किया जा रहा है ।

धर्म नगरी जयपुर में श्री दि० जैन मन्दिर मुरलीधर राना की नसिया खानियां में ४-५ फुट ऊँचे मानस्तम्भ की पंचकल्याणक पूजा आचार्य श्री सुधर्म सागर म० के ससंघ सानिध्य में दि० ८ से १३ फरवरी तक सम्पन्न हुई। **जैन गजट** (दि० २-३-९५) ने इस समाचार को प्रकाशित करते हुए ?आचार-शिरोमणि इन आचार्य श्री के लिए **परम पूज्य, राष्ट्र संत, संत शिरोमणि श्री १०८** आदि विशेषण प्रयुक्त किए हैं। महासभा दिगम्बर मुनि वेश धारियों की भी निर्मल चारित्र के धारी महामुनियों के समान ही भक्ति पूजा करके सचमुच ही धर्म संरक्षण (?) का कार्य कर रही है।

पंच-कल्याणक महोत्सवों जैसे आयोजनों से धार्मिक वातावरण एवं सामाजिक सौहार्द में अभिवृद्धि होती है, धार्मिक क्रियाओं के प्रति रुचि जाग्रत होती है तथा धार्मिक कार्यों के लिए दान देने की प्रवृत्ति बढ़ती है। इन महोत्सवों में दूर-दूर से आए धर्म बन्धुओं से मेल-मिलाप बढ़ता है। एकाधिक पूज्य आचार्य साधु या आर्यिका माता का सानिध्य भी प्राप्त कर लिया जाता है जो महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए श्रद्धालु जनों के लिए विशेष कारण बन जाते हैं। कहीं-कहीं तो महोत्सव का पूरा आयोजन ही साधु महाराज की प्रेरणा से और उनके ही मार्ग-दर्शन या देख-रेख में सम्पन्न होता है। सामाजिक संस्थाएं एवं संगठन भी अपने अधिवेशन महोत्सव-स्थल पर आयोजित करके लाभान्वित होते हैं। इस प्रकार वे अपने संगठन का धर्म से जुड़ा होना सिद्ध कर देते हैं और न केवल सभी खर्चों से बच जाते है वरन् अधिवेशन में जन समुदाय की उपस्थिति भी सुनिश्चित कर लेते हैं जो अन्यथा दुर्लभ होती है। धर्मस्थल में महासभा के शताब्दी समारोह का आरम्भिक अधिवेशन तथा मेरठ पंच-कल्याणक में उत्तरांचल दिगम्बर जैन महासमिति का अधिवेशन इसी मानसिकता के परिचायक हैं। शाकाहार सम्मेलन, विद्वत्गोष्ठी, सैमीनार-परिचर्चा आदि इन महोत्सवों की उपयोगिता और अधिक बढ़ा देते हैं। वस्तुतः ये पूजा महोत्सव हमारी जैन संस्कृति के अभिन्न एवं महत्वपूर्ण अंग है।

किन्तु वर्तमान काल में इन विशुद्ध धार्मिक महोत्सवों के स्वरूप में अनेक विकृतियां आ गई है। कुछ स्वार्थी अर्थ लोलुप जनों ने तो इनके माध्यम से **धर्म को व्यापार का साधन** ही बना डाला है। तरुण तपस्वी पूज्य मुनिराज श्री सरल सागर म० ने अपनी अति-सामयिक कृति **पंच कल्याण गजरथ समीक्षा** (प्रकाशक

–श्री कपूरचन्द्र जैन, अध्यापक, जैन मन्दिर के सामने, खंडे राव पार्क, देवरी, जि० सागर, म.प्र.,–४७०-२२६, पृष्ठ ७५, प्रकाशन वि.स. २०५१) में इन महोत्सवों का विभिन्न शीर्षको के अन्तर्गत बारीकी से विश्लेषण करके इनमें विकृत एवं व्यापारिक हुए स्वरूप को उजागर करने के लिए जो तथ्य प्रस्तुत किए हैं, हम आशा करते हैं कि समाज उनके प्रति जागरूक हो कर आगामी प्रतिष्ठाओं में उन्हें दूर करने का प्रयास करेगा। हम मुनि श्री के कुछ निष्कर्षों का सार नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं—

पंच-कल्याण—तीर्थंकरों के साक्षात् पंच-कल्याणक तो चतुर्थ काल में इन्द्रादिक देवों द्वारा अत्यन्त विभूति, भक्ति के साथ मनाए जाते हैं तथा पंचम काल में स्थापना निक्षेप से श्रावकों द्वारा प्रारंभ से ही मनाए जाते रहे हैं तथा इस काल के अंत तक मनाए जाते रहेंगे।

गजरथ— गजरथों की परम्परा अनार्ष है, पर पंच-कल्याणकों में भीड़ जुटाने के लिए अब उनमें एकाधिक गजरथों का प्रर्वतन, यहाँ तक कि सिंहरथों का प्रर्वतन भी किया जाने लगा है।

संगीत— प्राचीन भक्त दार्शनिक कवियों के पदों के स्थान में अब आधुनिक फिल्मों के अश्लील गीतों की धुनों पर बने भजनों से दर्शकों का मनोरंजन किया जाता है। वातावरण में हर समय गूंजती रहती ऐसी धुनों से धार्मिकता कैसे रह सकती है।

प्रदर्शन— पंचकल्याणक को मनोरंजन का साधन बना दिया गया है। ये आत्म-दर्शन के लिए थे, न कि प्रदर्शन के लिए। ये स्वदर्शन के साथ-साथ धर्म प्रभावना के भी अंग हैं। किन्तु अब इनमें कोरे प्रदर्शन की भावना ही प्रमुख होती जा रही है। प्रदर्शन की होड़ में **एक से एक भव्य पंडाल बनाए** जाते हैं, ४०-४०, ५०-५० **हजार रुपये के गेट** बनाए जाने सुनने में आते हैं। प्रदर्शन की होड़ में गजरथों की संख्या एक से नौ तक पहुँच चुकी है। रात्रि में होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए मंहगी से मंहगी संगीत-नाटक मंडलियां बुलाई जाती हैं। इन कार्यक्रमों में धार्मिकता तो नाम की ही रहती है, सस्ते मनोरंजन की ही प्रधानता रहती है।

पत्रिकाएं— साधुओं के सानिध्य में होने वाले आयोजनों में व्यवस्थित ढंग से पत्रिका साधु अधिकांशतः अपने मार्ग-दर्शन में छपवाने लगे है। इन पत्रिकाओं में आयोजन के कार्यक्रमों की सूचना से अधिक अपने सानिध्य से आयोजन को कृतार्थ करने वाले साधुओं के भव्य चित्रों की ही प्रमुखता रहती है। ये हल्के सस्ते कागज पर नहीं, अच्छी कोटि के आर्ट पेपर पर सुन्दर मुद्रण के साथ हजारों की संख्या में सर्वत्र प्रचार हेतु छपवा कर वितरित कराई जाती हैं। एक प्रति की कीमत १५-२० रुपये से भी अधिक होती है (द्रष्टान्त स्वरूप हमारे सामने श्री सम्मेदशिखर जी मधुबन में दि० ३ मार्च से १२ मार्च १९९५ तक आयोजित श्री १००८ आदिनाथ जिन-बिम्ब पंच-कल्याण प्रतिष्ठा महोत्सव एवं विश्व कल्याण कामना महायज्ञ की दीर्घाकार भव्य कुंकुम पत्रिका है जिसमें भ० आदिनाथ एवं भ० पर्श्वनाथ सहित आ० महावीर कीर्ति, आ० विमल सागर, आ० संभव सागर, आ० भरत सागर तथा आर्यिका प्रमुख सुपार्श्व माता जी के ४·५''X३·२'' के आकार के भव्य रंगीन चित्र हैं। यद्यपि यह भ० आदिनाथ के पंच-कल्याण महोत्सव की पत्रिका है, भगवान का जन्म व राजगद्दी वाराणसी नगरी में दिखाई गई है। पत्रिका में विद्वत् सम्मेलन तथा शाकाहार सम्मेलन भी विज्ञापित किए गए हैं किन्तु दैनिक कार्यक्रमों में इनका उल्लेख नहीं है।–सं०) इन पत्रिकाओं को कुछ समय बाद रद्दी की टोकरी में फेंक दिया जाता है या बेच दिया जाता है। रद्दी में इन देव गुरू के चित्रों की जो अविनय व अवमानना होती है उसकी कल्पना ही की जा सकती है। इस पाप में समान भागी पत्रिका के मार्ग दर्शक, छपवाने वाले, तथा वितरण करने वाले, सभी होते हैं। कुछ ही विवेक शील धर्म बन्धु इन चित्रों को निकाल कर विनयांजलि हेतु रखते हैं।

बोलियां— इन महोत्सवों में अधिकाधिक बोलियों की संरचना करके एवं अन्य प्रकार से भी अधिकाधिक रुपया खींचने का अधिकतम प्रयास किया जाता है। कुछ स्वार्थी अर्थ लोलुप आयोजकों ने कतिपय यश-ख्याति-पूजा के लोलुप साधुओं के सहयोग से **इन विशुद्ध धार्मिक उत्सवों को व्यापार का साधन बना लिया है।** कई प्रत्यक्षदर्शियों की शिकायत मिली है कि पंडाल में सुबह से देर रात तक सानिध्य दाता मुनिराजों व आर्यिकाओं की जय जय कार के साथ थोड़े-थोड़े समय के अन्तराल से बोलियों की गूंज होती रहती है तथा संभावित दातारों को

तरह-तरह से बोली बढ़ाने के लिए उकसाया जाता है। जो पंडित या प्रतिष्ठाचार्य जितना अधिक रुपया बोलियों के माध्यम से खींचने की कला में पारंगत होता है, वह उतना ही श्रेष्ठ माना जाता है। इस आय में से उन्हें बाकायदा कमीशन मिलता है। (हम स्वयं एक ऐसे दिवंगत वाक्-शिरोमणि वाणी-भूषण पंडितराज को जानते हैं जिनकी इस प्रकार के कमीशन से बड़ी मोटी आमदनी थी।—सं०) मुनि श्री के अनुसार बोलियों की प्रथा जैन समाज की ही विशेषता है तथा धार्मिक कृत्यों में बोलियों का जैसा नंगा नाच इस समाज में होता है वैसा और कहीं देखने को नहीं मिलता। बोलियों के माध्यम से दान देना दान नहीं है, दानधर्म के विरुद्ध है। किसी भी आर्षग्रन्थ में बोलियों का उल्लेख नहीं मिलता।

प्रतिष्ठाचार्य— कुछ एक प्रतिष्ठाचार्यों ने प्राय: सभी पंच-कल्याणक प्रतिष्ठाओं पर अपना एकाधिकार जमा रखा है। कुछ को शताधिक प्रतिष्ठाएं सम्पन्न कराने का श्रेय प्राप्त हो चुका है। प्रतिष्ठाचार्य पहले से ही अपनी फीस ठहरा लेते हैं तथा ५०-५० हजार तक लेते सुनने में आया है।

अपव्यय— बोलियों आदि से प्राप्त समाज के धन का आयोजकगण बड़ी बेदर्दी से अपव्यय करते हैं जैसा कि वह यदि अपना धन होता तो कदापि नहीं करते। (इस विषय पर हम कभी अलग से कुछ विस्तार से चर्चा करेंगे।—सं०)

पंच-कल्याणक प्रतिष्ठाएं अनावश्यक हैं, कुछ अपवादों को छोड़ कर। आज ऐसे अनेक ग्राम व बस्तियां हैं जहां पूर्वजों द्वारा निर्मित भव्य जिन मन्दिर तो खड़े हैं लेकिन उनमें विराजमान प्रतिमाओं की पूजा, प्रक्षाल, अर्चना के लिए श्रावक नहीं रह गए हैं तथा यदि वहां दिगम्बर जैनों के दो-एक परिवार बचे भी हैं तो उनमें धर्म के प्रति रुचि नहीं रह गई है, पूजा प्रक्षाल की बात दूर उन परिवारों के सभी सदस्य देव दर्शन भी नित्य नहीं करते। ऐसे भी अनेक जिन मन्दिर हैं जिनमें सैकड़ों की संख्या में जिन बिम्ब विराजमान हैं। मुनि श्री के अनुसार जब श्रावकों के धर्म साधन की आवश्यकता के लिए नए मन्दिरों का निर्माण किया जावे, वहां यदि उपरोक्त मन्दिरों से ही पूर्व प्रतिष्ठित प्रतिमा

प्राप्त कर विराजमान कर दी जाए तो कम पुण्य का बंध नहीं होगा। किन्तु व्यापार-बुद्धि प्रतिष्ठाचार्यों, पंडितों व आयोजकों ने पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा जैसे विशुद्ध धार्मिक आयोजन को भी व्यापार का साधन बना लिया है तथा एक-एक प्रतिष्ठा में अनेकों मूर्तियों की प्रतिष्ठा कराई जाती है। श्रावकों को भट्टारकीय युग में पूर्वाचार्यों के नाम से रचे श्रावकाचारों के हवाले से प्रेरणा दी जाती है कि एक अंगुल प्रमाण छोटी प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराने से असंख्यात पुण्य कर्मों का संचय होता है। इन प्रतिमाओं के निर्माण व क्रय में भी दलाली खाई जाती है।

पू० मुनि श्री सरल सागर जी म० की उपरोक्त कृति **पंचकल्याण-गजरथ समीक्षा** अति सामयिक है, विचारोत्तेजक है तथा इसका व्यापक प्रचार वांछनीय है, ताकि पंच-कल्याणक प्रतिष्ठाओं को विशुद्ध धार्मिक आयोजनों का स्वरूप पुन: प्रदान करने के प्रयास हों तथा इन प्रतिष्ठाओं के माध्यम से धर्म को व्यापार का साधन बनाने की प्रवृत्ति की रोक-थाम हो सके। ऐसे संवेदनशील विषय पर अपना बेबाक मार्ग-दर्शन देने के लिए हम मुनि श्री का अभिनन्दन करते हैं।

—अजित प्रसाद जैन

भगवान महावीर : दार्शनिक चिन्तन को नई दिशा

—डा० शशि कान्त

दो-हजार-पाँच-सौ-बावन वर्ष पहले* भगवान महावीर ने दार्शनिक चिन्तन को नई दिशा दी थी—अभ्युदय के स्थान पर निःश्रेयस को प्रधानता दी थी—प्रवृत्ति के बजाय निवृत्ति के मार्ग को, संसार-चक्र और उसके कारण दुःख की अनुभूति से त्राण का उपाय बताया था—भोग और संग्रह की जगह, तप और त्याग को, सुख का साधन बताया था।

अभ्युदय से आशय लौकिक उत्कर्ष—दुनियावी तरक्की—material advancement से है, और यह फल की अपेक्षा से किये गये कर्म का परिणाम होता है।

निःश्रेयस आध्यात्मिक उन्नयन—रुहानी तरक्की—spiritual advancement—सूचित करता है। इसमें निष्काम कर्म की अपेक्षा है—किसी लौकिक सुख-सुविधा की चाहना के बिना, अपनी भावना और करनी को संयमित रखते हुए, चिन्तन, मनन और ध्यान में लगे रहना।

प्रवृत्ति में प्रसार है—फैलाव है—अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए किसी दैवी या पराशक्ति की आराधना, स्तुति, पूजा करना, और उस शक्ति को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ-बलि आदि अनुष्ठान करना—और इस सबके लिए किसी गुरु, साधु, महात्मा, पुजारी या पुरोहित का सहारा लेना—ताकि हमें अपना मनचाहा मिल जाये।

---

*ईस्वी सन् से ५५७ वर्ष पूर्व महावीर ने केवलज्ञान प्राप्त कर अपनी प्रथम देशना दी और जैन परम्परा के २४वें एवं अन्तिम तीर्थंकर के रुप में अपने तीर्थ का प्रवर्तन किया तथा जैन धर्म-दर्शन-आचार के वर्तमान में प्रचलित स्वरूप के आधार की व्यवस्था दी।

निवृत्ति में संकोचन है—अपने में ही सिमटते जाना है और अपने पुरुषार्थ से अपनी आत्मा का विकास करना है—उसे क्रोध, मान, माया और लोभ के काषाय से—बन्धन से—छुड़ाकर, अपने ही शुद्ध स्वरुप की प्रतीति करना है—इसके लिए जो कुछ भी करना है वह हमें स्वयं ही करना है, कोई बाहरी शक्ति—देवी-देवता-जिन्न-फरिश्ते-साधु-महात्मा-पंडे-पुरोहित हमारी मदद नहीं करेंगे।

मनुष्य सुख चाहता है—सुख के लिए उसने स्वर्ग—बहिश्त—paradise की कल्पना की जहां सब प्रकार के भोग उपलब्ध हों—इच्छायें अपरिमित हों और उनकी तृप्ति के साधन असीम हों—और इस सबके लिए सुख-सुविधा के साधनों का कभी अभाव न हो—हम उनका बराबर संचय करते रहें—संग्रह करते रहें। इस लम्बी दौड़ का अन्त नहीं है—अगला छोर नहीं है—कभी न समाप्त होने वाली दौड़ जिसकी परिणति हम आज के उपभोक्तावाद—consumerism —मे देखते हैं।

तप इच्छा का निरोध है—इच्छाओं को अपने बस में करना है और अपनी आवश्यकताओं को सीमित करते जाना है—सब कुछ जो हमारे निजत्व से अलग है, जो केवल हमारी इन्द्रियों को लुभाता है—अपने स्पर्श, रूप, रस, गंध या स्वर से हमारे शरीर या मन को अपनी ओर खींचता है और फिर हमें क्रोध, मान, माया और लोभ के काषाय—रस्से—से कसता है—उसे छोड़ते जाना है। इन्द्रियों का इस प्रकार निग्रह त्याग है।

तप और त्याग हमें भोग और संग्रह की मानसिकता से छुड़ाकर संयम के मार्ग पर आगे बढ़ाते हैं जो निवृत्तिमूलक है और निःश्रेयस की प्राप्ति सुलभ करता है।

जैन धर्म बिकाऊ है !

—श्री कैलाश भूषण जिन्दल

मैंने कभी पञ्चकल्याणक नहीं देखा था। कुछ उत्सुकता, कुछ कौतुहल-वश मैं श्रावस्ती (बहराइच) २ मार्च को पहुँच गया। वहाँ नव-निर्मित ७५ फुट ऊँचा चौबीसी दिगम्बर जैन मन्दिर और मूल-वेदी पर आसीन भगवान सम्भव-नाथ की प्राण-प्रतिष्ठा और पञ्चकल्याणक उत्सव २ से ७ मार्च तक आयोजित किया गया था। विचार तो ७ तारीख तक रुकने का था, परन्तु ५ तारीख को ही ऊब कर लौट आया।

भगवान की हर लीला—गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्ष—में भाग लेने के लिए हर समय नीलाम होता रहता था और बोलियां लगती रहती थीं। १९४७ में अंग्रेज जब भारत छोड़कर अपने देश लौटे, तो लखनऊ में उनकी चल सम्पत्ति का कई दिन नीलाम हुआ। उन दिनों लखनऊ के विख्यात नीलामकर्ता दो ही थे—एमरन और पीक एलेन। श्रावस्ती में भी दो ही नीलामकर्ता थे—पण्डित प्रमोद कुमार जी जैन (मामाजी) और राजस्थान से पधारे श्री भूरेलाल भास्कर। आश्चर्य नहीं, यह दोनों महानुभाव पूर्वभव में एमरन और पीक एलेन रहे हों। व्यवसाय की समता भले ही हो, परन्तु इस जोड़ी में और १९४७ की जोड़ी में नीलाम करने की शैली में जमीन-आसमान का अन्तर है। वे लोग वस्तुओं का नीलाम करते थे, ये लोग पदों का नीलाम करते हैं। उन लोगों के लिए समय का मूल्य था। चार घण्टे में मकान का समस्त सामान नीलाम करना होता था। लगभग १०० वस्तुएं बेची जाती थीं। एक वस्तु का नीलाम पाँच मिनट से अधिक नहीं लेता था। तड़ा-तड़ बोली बढ़ती जाती थी। जैसे ही जहाँ बोली बढ़ना बन्द हुआ, तुरन्त नीलामकर्ता १, २, ३, की आवाज लगाता था और लकड़ी की हथौड़ी मार कर तत्सम्बन्धित वस्तु की नीलामी बन्द कर देता था। ग्राहक तुरन्त चीज का पैसा देकर, चीज को अपने कब्जे में कर घर चला जाता था। उसे १० से २ बजे तक निरन्तर बैठना नहीं पड़ता था।

इसके विपरीत श्रावस्ती में समय का कोई मूल्य नहीं था। एक-एक पद के लिए १५-२० मिनट तक बोलियों का सिलसिला चलता रहता था। जब कोई

बोली नहीं आती थी, तब भी १, २, ३, कहकर नीलाम समाप्त नहीं किया जाता था। भूरेलाल जी २ और ३ के बीच में बार-बार ढाई और पौने-तीन कहते रहते थे। बीच-बीच में अश्लील फिल्मी गाने भी गाते थे। श्रोताओं और दर्शकों को बाध्य करते थे कि बोली और बढ़ाएं, और बढ़ाएं।

४ तारीख को तो हद हो गई। राज्यपाल समारोह का उद्घाटन करके २ बजे अपराह्न वापस चले गए। उसके बाद २ बजे भगवान को पाण्डुकशिला पर ले जाने के लिए शोभायात्रा निकलनी थी। मगर बोली बोलने और बुलवाने से किसको फुर्सत। घट-यात्रा के लिए १०१ के ४६ सामान्य कलश पहले ही बिक चुके थे। फिर भी १६ रत्न-कलश, स्वर्ण-कलश, रजत-कलश, ताम्र-कलश की २१२१) से लेकर ५०१) तक की बोलियां लगीं। और तब शोभायात्रा ३ बजे अपराह्न शुरू हुई। ४ बजे जब भगवान पाण्डुकशिला पर विराजमान कर दिये गये, तो फिर बोलियां शुरू हो गईं। आपस में होड़ लग गई, भगवान पर पहली जल धारा कौन डाले। भूरेलाल जी तो मौके की तलाश में थे। ऊपर पाण्डुकशिला पर चढ़कर नीलाम शुरू कर दिया। यह ग़नीमत हो गई कि जैन रात में भोजन नहीं करते, वरना भूरेलाल जी घंटों बोली बोलते रहते। किसी ने कहा : 'हे पार्थ! प्रण पालन करो, देखो अभी दिन शेष है।' यह सुनकर भूरेलाल जी शांत हुए, पांच बजे बोली समाप्त हुई। १५११५) की पहली बोली, ११११११) की दूसरी बोली, ५५५५) की तीसरी-चौथी, ३०३०) की पांचवी-छठी, १५१५) की सातवीं और ११११) की अन्तिम बोली रही। इस क्रम से आठ श्रावकों को भगवान पर जलधारा डालने का पूर्वाधिकार दिया गया। बाकी ४६ १०१) रुपये के कलशधारी यूंही भीड़-भड़क्का में एक-दूसरे पर जल डालते रहे।

सबसे अभागे तो बहराइच के अशोक कुमार जी रहे। इन्होंने ३०१३०) की बोली पर पाण्डुकशिला पर पुष्प वृष्टि करने का अधिकार प्राप्त किया था। शोभायात्रा पाण्डुकशिला पर इतनी देर से पहुँची कि फैजाबाद से उड़कर वायुयान निश्चित समय पहुँचकर निश्चित स्थान पर किसी को न पाकर वापस लौट गया, या वायु की तीव्रगति को देखकर फैजाबाद से वायुयान रवाना ही नहीं

हुआ। जो कुछ भी हो, बिचारे अशोक कुमार न तो उद्घाटन समारोह में और न ही शोभायात्रा में, शामिल हो पाए, ना पाण्डुकशिला पर उन्होंने जलधारा डाली, और ना ही पुष्प-वृष्टि की।

शोभा यात्रा का सबसे अभद्र अंग वैतनिक बाजेवाले और कलशधारी श्रावक और श्राविकाएं थीं जो सारे रास्ते अश्लील फिल्मी गीत गाते चले। हर फिल्मी गाने की प्रथम पंक्ति उद्धृत करना पर्याप्त है : ले जाऐंगे, ले जाऐंगे, दिलवाले, दुलहनिया ले जाऐंगे; अम्मा देख ! तेरा मुण्डा बिगड़ा जाये; दीदी तेरा देवर दिवाना, हाय राम कुड़ियों को डाले दाना। एक-दो शब्द या मुहावरे इधर से उधर बदल देने से फिल्मी गाना भक्ति-भजन नहीं बन जाता।

पूर्व-घोषित कार्यक्रम के अनुसार ७ बजे शाम से "बालक आदि कुमार का पालना" होना था। सजा-सजाया पालना मञ्च पर ८ बजे लाया गया, और उस पर "बालक आदि कुमार" को प्रतिष्ठाचार्य पंडित विमल कुमार जी जैन सौरैय्या ने ६ बजे लाकर बिठाया। और फिर बोलियां शुरू हो गईं। ६.३० तक बोलियां समाप्त नहीं हुईं। ढाई घन्टे की प्रतीक्षा के बाद मेरा धैर्य टूट गया। भगवान का पालना झुलाए बगैर ही मैं, सियाराम शरण की आर्द्रा से पंक्तियां गुनगुनाता हुआ, मण्डप से बाहर चला आया—

ऐ, क्या मेरा कलुष बड़ा है, देवी की गरिमा से भी,
किसी बात में हूं मैं आगे, माता की महिमा से भी ?

दूसरे दिन प्रातः पता चला कि रात को पौने दस बजे पालना झुलाया गया। १५११५) रु० में यह सौभाग्य कन्नौज के सवाई लाल जैन को मिला। तीन और महानुभावों ने क्रमशः ५१५१) और ५०५०) रु० देकर पालना झुलाया। पता नहीं मण्डप में बैठे सैकड़ों श्रद्धालुओं को धर्म के ठेकेदारों ने पालने की डोरी खींचने का अवसर दिया कि नहीं। कृष्ण जन्माष्टमी के पर्व पर जब रात के १२ बजे, भगवान कृष्ण का जन्म होता है, तो कोई बोली नहीं लगती। श्रद्धालु पंक्ति-बद्ध होकर चलते जाते हैं। सबको भगवान का पालना झुलाने का अवसर दिया जाता है। अपनी भक्ति और सामर्थ्य के अनुसार लोग दान-पात्र या आरती की थाली में अपने श्रद्धा-सुमन चढ़ाते जाते हैं।

भाग्यशाली हैं भगवान के माता-पिता (बाराबंकी के महावीर प्रसाद और उनकी पत्नी) और स्वयं भगवान (ब्रह्मचारी धर्मेश) जिनका नीलाम नहीं हुआ। धन्य हैं ब्रह्मचारी धर्मेश जिन्होंने आदि कुमार का सम्पूर्ण अभिनय करने के लिए भरी सभा में सभी वस्त्र त्याग दिये और ग्यारह प्रतिमाधारी श्री १०८ प्रबल सागर मुनि हो गए। किसी श्रावक में न इतना त्याग था न साहस, अन्यथा भूरेलाल जी भगवान को भी बेच खाते।

छह दिन के पञ्चकल्याणक महोत्सव को सम्पन्न करने में जितना समय लगा, उसका एक-तिहाई समय (दो दिन) ६० बोलियों को बोलने और समाप्त करने में नष्ट हुआ। नीलामी बोलियों से बहुत कर्म बन्धन होता है। आपस में ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिस्पर्धा, होड़, दूसरे को नीचा दिखाने की भावना उत्पन्न होती है। समाज से इस कुरीति को निकालने का सीधा-साधा विकल्प है। पञ्च-कल्याणक में जितना रुपया खर्च होगा, उसका पहले से ही आकलन कर लिया जाए। अनुमानित रकम को पदों की गरिमा के अनुसार बांट दिया जाए और उसकी विज्ञप्ति कर दी जाये। यदि एक पद के लिए कई भाई रकम भेजते हैं, तो "प्रथम आगतम्, प्रथम स्वागतम्" के सिद्धान्त पर एक का चयन कर लिया जाये; औरों की रकम वापस कर दी जाये।

कुछ भाइयों का मत है कि पञ्चकल्याणक महोत्सव में १० लाख रुपया आया, यह रुपया बिना बोलियों के कैसे इकट्ठा होता? मैं इन भ्रमित भाइयों को बताना चाहता हूं कि मन्दिर के निर्माण में ३५ लाख रुपया लगा। जैन समाज में दातारों की कमी नहीं। ३५ लाख बिना बोलियों के पहले ही इकट्ठा हो गया था। इस ३५ लाख में निर्मल कुमार जी सेठी, सुमेर चन्द जी पाटनी, सौभाग्यमल जी काला का भी योगदान है। पहले दो महानुभाव श्रावस्ती में महोत्सव के समय उपस्थित थे। परन्तु उन्होंने किसी नीलामी बोली में भाग नहीं लिया, क्योंकि वह सिद्धान्ततया इस प्रथा के विरुद्ध हैं(?)। सौभाग्यमल जी ने ३,५०,००० खर्च करके मन्दिर का विशाल-काय द्वार बनवाया, जिसके ऊपर मानवाकार घोड़े पर चढ़े हुए राजा सोहलदेव राय की प्रतिमा है। यह वह वीर हैं जिन्होंने १२वीं शती के अन्तिम दशक में श्रावस्ती को मुहम्मद गौरी के साथ आये मुसलमानों के आक्रमण से बचाया था।

यदि सौभाग्यमल जी मन्दिर के निर्माण के लिये स्वत: ३,५०,००० दे सकते थे, तो वह १,००,००० भी सहर्ष दे देते जो उनसे जबरन बोलियां बुलवाकर वसूल किया गया। यह भी ध्यान में रखना होगा कि तथाकथित १० लाख की वसूली में २,६६,८८७ विना नीलामी की बोलियों के वसूल हो गया था। इस २,६६,८८७ में यदि १,०२,०८७ सौभाग्यमल जी से वसूल किए हुए और छप्पन कुमारियों और इष्ट देवियों से प्राप्त रकम (जिसके आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं) जोड़ दी जाये तो नीलामी बोली से वसूली केवल ६ लाख रह जाती है। यह रकम पूर्व निर्धारित योजना से, जैसा कि ऊपर इंगित किया गया है, आसानी से वसूल हो जाती और बहुत कर्म-बन्धन बच जाता। जो समय नीलाम में नष्ट किया गया, वह चिन्तन, मनन, पूजन, प्रवचन में लगाया जाता तो धर्म की प्रभावना की श्रीवृद्धि होती। नवनिर्मित मन्दिर के प्रबन्ध, दैनिक पूजा, अर्चना, प्रक्षालन, यात्रियों के रहने और भोजन की व्यवस्था के लिए आचार्य १०८ श्री पुष्पदन्त सागर जी महाराज के एक इशारे पर बिना किसी नीलामी बोली के तुरन्त १,७४,४८५ का ध्रौव्य फंड इकट्ठा हो गया। इसी प्रकार महाराज के दूसरे इशारे पर यह ६ लाख भी बिना नीलामी बोली के प्रपञ्च के इकट्ठा हो जाता। हाँ, सौरैय्या जी और उनके अनुगतों का व्यवसाय संकट में पड़ जाता।

श्रावस्ती एक पर्यटक स्थल है। यहाँ जापान, थाइलैण्ड, चीन, म्यामार और श्री लंका के भव्य बौद्ध मन्दिर हैं। श्वेताम्बरों का भी संगमरमर का एक मन्दिर है। अतएव इस पुण्यभूमि में एक दिगम्बर जैन मन्दिर बनना अत्यावश्यक था। इस मन्दिर के निर्माण के प्रेरणास्रोत श्री सौभाग्यमल जी, जिन्होंने पाँच लाख का अनुदान दिया, हमारे साधुवाद के पात्र हैं। परन्तु एक बात समझ में नहीं आई। मूलवेदी पर विराजमान तीसरे तीर्थंकर सम्भवनाथ की प्राणप्रतिष्ठा हुई, पर पञ्चकल्याणक महोत्सव आदि भगवान ऋषभदेव का किया गया। सम्भवत: मरुदेवी के सोलह स्वप्न, नव-जात शिशु का पाण्डुक शिला पर अभिषेक, नीलाञ्जना का भरी सभा में नाचते-नाचते सहसा निधन— ऐसे नाटकीय तत्त्व हैं जो जनता को रोचक लगते हैं और इन्हीं का हर पञ्चकल्याणक में प्रदर्शन करके प्रतिष्ठाचार्य विमल कुमार जी और उनकी नाटक

मण्डली को वाह-वाह और जयकार मिलती है। तरस आता है मुझे भोली-भाली जनता पर।

१९९१ की जनगणना के अनुसार इस समय जितनी जैनियों की आबादी है, उससे अधिक भारत में जैन मूर्तियां हैं। श्रावस्ती के बाद जैन मन्दिर और मूर्तियों के निर्माण पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिये। भारत में इसाई धर्म गिरजाघरों के बल पर नहीं बढ़ा है। वह बढ़ा है मिशनरी स्कूलों, अस्पतालों और "सत्त्वेषु मैत्री" के आधार पर। आज मदर टेरेजा अपनी "सिस्टर्स ऑफ चैरेटी" के बल पर विश्व में पूजी जा रही हैं। हमारे आचार्य भी विश्व-पूजनीय हो सकते हैं, यदि हम मन्दिरों की अपेक्षा स्कूल, कॉलिज, अस्पताल, असहाय-अनाथ-वृद्ध-आश्रम खोलना शुरू कर दें। इसके लिए हमें अपनी "कूप-मण्डूक गति" छोड़नी होगी। "मैं रहूं आप में आप लीन" की भावना छोड़कर व्यापक दृष्टिकोण अपनाना होगा। जैनियों में उद्योगपतियों, पूंजीपतियों, दातारों की कोई कमी नहीं है। परन्तु उनके दान का सदुपयोग करने वाला कोई नहीं है। मुनि-संघ में शायद कोई आचार्य सामने आ जाये जो उनका मार्ग-दर्शन करे और धर्म की प्रभावना जैनेतरों में फैलाए। अन्यथा, जब ईसु-मसीह सलीब पर टांगे गये थे, तो उनके अन्तिम वाक्य से मैं सन्तोष कर लूंगा :

"हे भगवान, इन्हें क्षमा करो।
ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।"

——

विज्ञानवादी धर्म का अवैज्ञानिक रुपान्तरण

—श्रीमती वासंती शाह

हमारे देश में जितने धर्म प्रचलित हैं, उन सबके अलग-अलग उपासना स्थान हैं। एक धर्म के मन्दिर के पड़ोस में दूसरे धर्म का मन्दिर दुश्मन की भांति खड़ा होता है। किसी नगर के समीप अगर नयी वस्ती बस जाए तो वहां तेजी से नये-नये मन्दिर बनाये जाते हैं। इस सामाजिक प्रवृत्ति में धार्मिकता नगण्य होती है। अपनी अलग सांप्रदायिक पहचान प्रकट करने की हठधर्मिता इस प्रवृत्ति की जड़ में होती है।

सभी धर्मों के सिद्धांतों में दया, प्रेम, भाई-चारा तथा सेवा की सीख दी जाती है। लेकिन इन महत्वपूर्ण धर्म तत्त्वों की अपेक्षा व्यक्ति की आस्था मूर्ति की भक्ति में अधिक होती है। भक्त की धारणा होती है कि वह जिस प्रकार की मूर्ति की पूजा करता है उसी प्रकार भगवान प्रभु का स्वरूप होता है।

जैन धर्म के अनुयायी वीतराग विज्ञान के अनुयायी कहलाते हैं। सर्वज्ञ-प्रणीत जैन धर्म के एक मात्र अपवाद को छोड़ दुनिया के अन्य सारे धर्म अवैज्ञानिक हैं— क्योंकि उनकी मान्यता है कि विश्व का निर्माण परमेश्वर ने किया। जैन धर्म के सर्वज्ञ तीर्थंकरों ने बता दिया है कि विश्व का कोई निर्माता, परमेश्वर नहीं है। विश्व स्वयंभू अनादि, अनंत है। विश्व के छः घटक द्रव्य हैं जिनमें जीव या आत्मा का शुमार होता है। आत्मा ज्ञान-दर्शन युक्त द्रव्य है। कर्म बद्ध जीवात्मा पुद्गलरूपी शरीर से अनादि संयुक्त है। शरीर से मुक्त होना जीवात्मा का ध्येय है। जैन दर्शन का यह प्रमुख सिद्धांत है।

भाव-शुद्धि से जीव कर्म-मुक्त होता है। भाव-शुद्धि के लिए मनुष्य को अहिंसा, संयम और तप इन तीन व्रतों का आचरण आवश्यक है। भाव-शुद्धि संपन्न हो जाने पर साधक को यह अनुभव हो जाता है कि वह शरीर से भिन्न है।

इस प्रत्यक्ष अनुभव को जैन धर्मशास्त्र ने भेद-विज्ञान कहा है। भेद-विज्ञान शब्द बड़ा अर्थ पूर्ण है क्योंकि शरीर से अपने अलग होने का साधक का अनुभव एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। विज्ञान का अर्थ है, To know the how.

वस्तु में रूपांतरण करने की कला को जानना, विज्ञान है। इस अर्थ से धर्म की साधना आत्म-विज्ञान, आत्म-बोध से ही पूर्ण होती है। और आत्म-बोध के लिये रागरहित होना, वीतराग होना अनिवार्य है : तीन लोक में सार, वीतराग विज्ञान है।

सबसे पहले विज्ञान शब्द का प्रयोग जैन धर्मशास्त्र में किया गया। मनुष्य के मन का रूपांतरण करने एवं नर को नारायण बनाने की उम्मीद के साथ जैन धर्मशास्त्र ने विज्ञान-भेद विज्ञान शब्द को प्रस्तुत किया। जैन धर्म के विज्ञान-वादी होने के बावजूद आगे चलकर जैनों में मूर्ति पूजा प्रचलित हो गई। वीतराग मार्ग एवं धर्म की स्मृति जगाने के प्रतीकात्मक साधनरूप में पद्मासनस्थ ध्यानमग्न प्रतिमा का जैन उपासना मार्ग में सूत्रपात किया गया। किन्तु इसका विपरीत प्रभाव पड़ा। मूर्ति के कारण द्वेष और क्रोध को प्रोत्साहन मिला। संघर्ष और पंथभेद को बढ़ावा मिला।

श्वेताम्बर पंथ का विश्वास है कि मूर्ति में आंखे लगाई जाएं तो दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। श्वेताम्बरों में अंजनशलाका नामक विधि है जिसके अंतर्गत स्वर्ण की शलाका से मूर्ति के नेत्रों में ज्ञानांजन लगाया जाता है। इस विधि से मूर्ति को दिव्य दृष्टि प्राप्त होकर उसे चराचर का ज्ञान होता हैं।

परन्तु दिगम्बर जैन चक्षुसहित मूर्ति को परिग्रही मानते हैं और उसे नमस्कार नहीं करते। मूर्ति को भगवान बनाने की उनकी अपनी विधि है। मूर्ति के वक्षपर बीज मंत्राक्षर अंकित किये जाते हैं। मंत्राक्षर मूर्ति में संक्रमित होकर वह प्रतिमा अर्हत्पद को प्राप्त कर लेती है, ऐसी दिगम्बर जैनों की श्रद्धा है।

वीतराग धर्म और वीतराग प्रतिमा को मानते हुए भी दिगम्बर और श्वेताम्बर पंथों के बीच ऐसे कई मुद्दो को लेकर गत दो हज़ार वर्षों से विरोध और मनमुटाव बना हुआ है। दोनों पंथों के मन्दिर, धर्म ग्रन्थ, पूजा विधान, साधु महात्मा, भिन्न-भिन्न हैं।

इन दोनों पंथों के मालदार अनुयायी और साधुगण मूर्ति को भगवान बनाने की प्रक्रिया में शामिल हो जाते हैं और ऐसे अवैज्ञानिक क्रिया-कांड पर लक्षावधि रुपयों का अपव्यय करते हैं। मूर्ति, मन्दिर और प्रतिष्ठा-विधि पर जितनी

(शेष पृष्ठ ३० पर)

जैन समाज के समक्ष चुनौती

—श्री राजेन्द्र कुमार जैन

हमारे देश में दो विचारधारायें सदैव रही हैं, एक है वैदिक विचारधारा तथा दूसरी है श्रमण। प्राचीन साहित्य, इतिहास एवं शिलालेखों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया है कि भारतीय संस्कृति में श्रमण परम्परा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है और इसका अपना विशिष्ट स्थान है। वेद से लेकर आज तक के भारतीय साहित्य में इन दोनों परम्पराओं के साथ-साथ रहने के उल्लेख हमें मिलते हैं। परन्तु कुछ लोग जानबूझकर जैन धर्म की स्वतंत्र सत्ता को नकारने में लगे हैं और जैन धर्म को हिन्दू धर्म का एक अंग कहते हैं। इन लोगों के प्रयासों से तीन चुनौतियाँ जैन समाज के समक्ष आ गई हैं जो इस प्रकार हैं :

१. पहले भारत में जैन धर्म को अल्पसंख्यक धर्म के रूप में हमारी केन्द्र व राज्य सरकारें मानती थीं। परन्तु इस बार केन्द्र सरकार की ओर से जो अल्पसंख्यक धर्मों की सूची जारी की गई है उसमें केवल पाँच धर्म दिये गए हैं और जैन धर्म को निकाल दिया गया है। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जो अल्पसंख्यक धर्मों की सूची जारी की गई है उसमें से भी जैन धर्म को निकाल दिया गया है। जैन धर्म को अल्पसंख्यक धर्मों की सूची से निकालने का तात्पर्य यही है कि हमें जानबूझ कर हिन्दू धर्म का अंग बनाया जा रहा है और अब भविष्य में हम अपने विद्यालयों को अल्पसंख्यक विद्यालयों के रूप में नहीं चला सकेंगे।

(पृष्ठ २६ का शेष)

धनराशि लगायी जाती है, उसका आधा हिस्सा भी ये लोग निर्धन धर्मबांधवों की उन्नति पर नहीं लगाते। अपने समाज की रक्षा में धर्म की रक्षा है, इस महत्वपूर्ण सत्य को हमारे साधु और उनके धनिक भक्त भूल गये हैं।

मूर्ति प्रतिष्ठा और विधि विधानादि क्रिया-कांड में विज्ञानवादी धर्म विचार के लिये गुंजाइश ही कहां है ? उसमें न तो सामाजिक हित की भावना है और न ही मानवोचित करुणा है। विज्ञानवादी धर्म के अवैज्ञानिक रूपान्तरण की प्रक्रिया की रोकथाम, सच्चे धर्मानुयायियों का पवित्र दायित्व है। ★

इस बारे में उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री जी को एक ज्ञापन दिया गया है जो इस प्रकार है : "उत्तर प्रदेश की जैन समाज की ओर से हम आपका ध्यान निम्न विषय की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं :

भारतीय संविधान की धारा २५(२ बी–२) तथा ३० (१) के अनुसार सभी अल्पसंख्यकों को चाहे वे धर्म या भाषा के आधार पर अल्पसंख्यक हों, अपने धार्मिक स्थान व विद्यालय स्थापित करने एवं उनका प्रबन्ध व संचालन अपनी मर्जी से करने का अधिकार प्राप्त है। संविधान के अनुसार ही वह समाज अल्पसंख्यक है जो उस सम्पूर्ण राज्य की जनसंख्या के ५० प्रतिशत से कम है।

सारे भारत में जनगणना से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार जैन धर्मावलम्बियों की संख्या ५० लाख से भी कम है जिसके अनुसार जैन धर्मावलम्बी हमारे देश व उत्तर प्रदेश में अल्पसंख्यक समाज हैं। उत्तर प्रदेश के अल्पसंख्यक आयोग के सचिव के पत्र संख्या सी जे ० १८७/१७३५/ऊ०सं०आ०/१९८२ दिनांक ४ नवम्बर, १९८२, के अनुसार धार्मिक अल्पसंख्यकों में मुसलमान, ईसाई, सिख, बौद्ध, जैन व पारसी आते हैं। राज्य सरकार की एक विज्ञप्ति २५ अक्टूबर, १९९४, के समाचार पत्रों में प्रकाशित की गई है जिसमें प्रदेश में ६ के स्थान पर ५ अल्पसंख्यक धर्म घोषित किये गये हैं जिनमें से जैन धर्म को निकाल दिया गया है जिसका कोई कारण नहीं बताया गया है। हमारे बिचार में यह अनुचित कदम है।

आप एक न्यायप्रिय मुख्यमंत्री हैं और आपने प्रदेश में हो रहीं अनेक विषमताओं को दूर किया है। सभी को न्याय मिले इसका आपने अनेक बार आश्वासन दिया है। जैनधर्म हिन्दूधर्म से सर्वथा भिन्न है और उसकी मान्यतायें भी हिन्दूधर्म से भिन्न हैं। भगवान बुद्ध व भगवान महावीर दोनों समकालीन थे और दोनों ने ही हिन्दूधर्म में फैली विषमताओं के विरोध में क्रान्ति की और लोगों ने उन्हें दिल से स्वीकारा। हमारा आपसे अनुरोध है कि आप प्रदेश में अल्पसंख्यक धर्मों में जैन धर्म को भी घोषित करने की कृपा करें ताकि जैन समाज के साथ हो रहीं ज्यादती को दूर किया जा सके।"

केन्द्रीय सरकार से भी इस मामले को उठाया गया है परन्तु अभी तक इस दिशा में कोई परिणाम सामने नहीं आया है।

२. जनगणना के समय जनगणना फार्म में धर्म का जो कालम होता है उसमें पहले जैन समाज के लोगों का धर्म 'जैन' लिखा जाता था। परन्तु अब सरकार ने इस फार्म में लिखे जाने वाले धर्मों की सूची तय कर दी है जिसके परिणाम-स्वरूप सभी जैन धर्म के अनुयायियों का धर्म हिन्दू धर्म ही लिखा जाएगा। इस प्रकार जानबूझकर जैनधर्म को हिन्दूधर्म का एक अंग बनाया जा रहा हैं।

३. उत्तर प्रदेश सरकार प्रदेश में उत्तर प्रदेश हिन्दू सार्वजनिक धार्मिक संस्था (सम्पत्ति अपव्यय निवारण) अधिनियम, १९६२, के स्थान पर एक नया अधि-नियम लागू करने पर विचार कर रही है जिसके अन्तर्गत हिन्दू मन्दिरों को अपनी आय व सम्पत्ति का ब्यौरा राज्य सरकार को देना अनिवार्य होगा एवं हिन्दू की परिभाषा में जैन धर्म को भी शामिल कर लिया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समस्त जैन समाज के सामने अपने अस्तित्व को बनाए रखने की बड़ी चुनौती सामने है। ऐसे में सम्पूर्ण जैन समाज का यह दायित्व हैं कि वह आपस में झगड़कर एकता को भंग न करें बल्कि एक-जुट होकर वर्तमान चुनौतियों को स्वीकार कर राजनीतिज्ञों पर अपने प्रभाव का प्रयोग करें ताकि जैन समाज का स्वतंत्र अस्तित्व बना रह सके।

[जैन धर्म को एक स्वतन्त्र सर्वांग धर्म स्वीकार किये जाने के संबध में विगत एक शती में प्राच्यविदों के अभिमतों का उल्लेख डा० ज्योति प्रसाद जैन द्वारा Jainism : The Oldest Living Religon और Religion and Culture of the Jains में किया गया है। इसी अंक में पृ. ५-१२ पर भी उनका लेख दृष्टव्य है। प्रो० दास गुप्ता की History of Indian Philosophy, पं० जवाहर लाल नेहरू की Discovery of India, हेनरिक जिमर की Philosophies of India और जे. एन. फारुख की Modern Religious Movement in India में जैनधर्म के पृथक स्वतन्त्र अस्तित्व को मान्य किया गया है।

दिल्ली उच्चन्यायालय की खण्डपीठ द्वारा आर्यसमाज एजुकेशन ट्रस्ट दिल्ली बनाम डायरेक्टर ऑफ एजूकेशन, दिल्ली एडमिनिस्ट्रेशन, रिट याचिका सं. ३३४/१९७४ में दिनांक १७-११-१९७५ को दिये गये निर्णय में यह स्पष्ट कहा गया है कि न केवल संविधान में वरन् हिन्दू कोडबिल तथा जनसंख्या

रिपोर्टों में भी इस बात को मान्यता दी गयी है कि जैन धर्म के अनुयायी हिन्दू धर्म से पृथक धर्म को मानने वाले हैं। मार्च-अप्रैल १९४७ में संविधान सभा में जैनों द्वारा दिये गये एक ज्ञापन में यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि जैनधर्म हिन्दूधर्म से पृथक है और उस तथ्य को मान्य किया गया था। यद्यपि न्यायालयों के अनेकों निर्णयों में यह दर्शाया गया है कि जैन लोगों पर हिन्दू लॉ लागू होता है और व्यापक दृष्टिकोण से ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में यह ठीक भी है, किन्तु इन निर्णयों में कहीं भी यह नहीं कहा गया है और न ही उनके आधार पर यह सिद्ध होता है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३०(१) के प्रयोजन के लिए भी जैनधर्म हिन्दूधर्म का भाग है। माननीय न्यायालय ने निष्कर्षतः कहा कि "अतः हमारा यह निर्णय है कि अनुच्छेद ३०(१) के प्रयोजन के लिए जैन लोग धर्म के आधार पर अल्पसंख्यक हैं।"

दिल्ली उच्च न्यायालय का यह निर्णय ए. आई. आर. १९७५ (दिल्ली) में रिपोर्टेड है।

वैचारिक एवं विधिक स्थिति उपरोक्त होते हुए भी भारत सरकार ने जैन धर्म को अल्पसंख्यक की सूची से हटा दिया है, यह विचारणीय एवं चिन्ता का विषय है। जब तक भारत सरकार पुनः जैन धर्म को अल्पसंख्यकों की सूची में नहीं लाती, प्रदेश सरकार उस पर कोई विचार नहीं करेगी क्योंकि ऐसे संवेदनशील मामलों में प्रदेश सरकारें केन्द्रीय सरकार का ही अनुसरण करती है। अतः जैन समाज के विधिमर्मज्ञों को एक साथ बैठकर और एकजुट होकर प्रथमतः केन्द्रीय सरकार को अपना आदेश पुनरीक्षित करने के लिए प्रेरित करना चाहिये।

—शशि कान्त]

कवि छीहल और उनकी रचनाएँ

—श्री वेद प्रकाश गर्ग

जैन भक्त एवं मर्मी संत कवि छीहल के व्यक्तिगत जीवन की विशेष जानकारी अद्यावधि अज्ञात है। प्राप्त प्रकाशित ग्रंथों में भी उनके संबंध में सामान्य सूचनाओं के अतिरिक्त किसी विशेष ज्ञातव्य का अभाव ही है। साहित्य के इतिहासों, खोज-रिपोर्टों तथा अन्यान्य ग्रंथों में प्राप्त अधिकांश सामग्री सूचनात्मक है, जिसका ऐतिहासिक महत्त्व भर है। उनकी प्राप्त रचनाओं में अन्तः साक्ष्य के रूप में केवल **बावनी** के एक छप्पय में कवि के सम्बन्ध में निम्न-लिखित सूचना मिलती है—

नाल्हिग बंस सिनाथू सुतन,[1] अगरवाल कुल प्रगट रवि ।
बावन्नी बसुधा बिस्तरी, कवि कंकण छीहल्ल कवि ।।

इससे ज्ञात होता है कि छीहल नाल्हिग-वंश में अग्रवाल कुल के थे। उनके पिता का नाम सिनाथू (शाह नाथू) था और लोक में कवि-कंकण के रूप में वे प्रसिद्ध हुए। कवि की गुरु-परम्परा आदि की जानकारी सुलभ नहीं है। एक प्रकार से बहिःसाक्ष्य का सर्वथा अभाव है। उनकी रचनाओं की भाषा पर राजस्थानी प्रभाव के कारण लगभग सभी विद्वानों ने इन्हें राजस्थान की ओर का रहने वाला माना है, जिसे अनुचित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि रचनाओं की भाषा-शैली के आधार पर इनका सम्बन्ध राजस्थान से जोड़ना असंगत नहीं है।

छीहल ने अपनी रचनाओं में अरिहन्तों-आदि का स्तवन किया है, जिससे उनका जैन-मतानुयायी होना प्रकट है। वे जैन कवि थे। अतः छीहल को जैनेतर कवि[2] कहना भ्रामक है।

कवि छीहल की तीन रचनाओं में रचना-काल का उल्लेख है—

१. **माधवानल-कथा** (सं० १५७१ वि०), २. **पंच-सहेली** (सं० १५७५) और ३. **बावनी** (सं० १५८४)।

इन उल्लेखों से ज्ञात होता है कि कवि सं० १५७१-१५८४ में काव्य रचना कर रहा था। उनकी अन्य किसी कृति में रचना-काल उल्लिखित नहीं

है। उनकी सभी रचनाओं के अध्ययन के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि **माधवानल-कथा** कदाचित् उनकी पहली रचना है। उसके सरल-बखान से वह एक भावुक युवक की रचना ठहरती है। इस आधार पर अनुमान है कि उसकी रचना २०-२१ वर्ष की उम्र में की होगी। अतः कवि का जन्म अनुमानतः सं० १५५० के आस-पास माना जा सकता है। वह कब तक जीवित रहा, यह जानने का कोई स्पष्ट आधार नहीं है, किन्तु वह सं० १५८४ तक अवश्य जीवित था, जैसा **बावनी** के रचना-काल से स्पष्ट है। तात्पर्य यह है कि कवि विक्रम की १६वीं शती के उत्तरार्द्ध में विद्यमान था और उसका रचना-काल सं० १५७१-१५८४ अवश्य था।

कवि छीहल की निम्नलिखित सात रचनाएँ अब तक उपलब्ध हुई हैं—

१. **माधवानल-कथा**, २. **पंच-सहेली**, ३. **बावनी**, ४. **उदर-गीत**, ५. **पंथी-गीत**, ६. **पंचेन्द्रिय वेलि** और ७. **आत्म-प्रतिबोध जयमाल**।

कुछ महानुभावों ने उक्त कृतियों के अतिरिक्त इनकी तीन अन्य रचनाओं—१. **रे मन गीत**, २. **जग सपना गीत** और ३. **फुटकर गीत**—की भी सूचनाएँ दी हैं, किन्तु इनकी प्राप्ति के अभाव में इनके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। संभव है, प्रथम दोनों रचनाएँ क्रमशः **पंथी-गीत** एवं **पंचेन्द्रियवेलि** के ही अन्य नाम हों। अब प्रत्येक रचना का परिचय दिया जा रहा है—

१. **माधवानल-कथा** : रचना-क्रम की दृष्टि से यह स्यात् छीहल कवि की पहली रचना है। 'माधवानल-काम कंदला' की सरस एवं लोकप्रिय कथा को आधार बना कर कवि ने सं० १५७१ वि० (१५१४ ई०) में इसकी रचना की थी। छीहल की यह कथा रचना इस परम्परा की दूसरी कड़ी है। इसकी एक मात्र प्रति हारवर्ड विश्वविद्यालय, अमेरिका, के ग्रंथालय में सुरक्षित एक गुटके में उपलब्ध है। यह १८ पृष्ठों में लिखी गई है। इसको प्रकाश में लाने का श्रेय श्री अशोक कुमार मिश्र को है। उन्होंने इस पर एक स्वतन्त्र लेख लिख कर हिन्दी-संसार को इससे परिचित कराया था। यह लेख काशी से प्रकाशित होने वाली पत्रिका **श्रमण** (जुलाई १९७६) में प्रकाशित हुआ था। भारतीय प्रेमाख्यान परम्परा की यह शृंगार परक प्रेम कथात्मक रचना है जिसका निर्माण दोहा-चौपाई में हुआ है।

२. **पंच-सहेली** : यह रचना **पंच-सहेली रा दूहा** के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसमें ६८ दोहे हैं। अंत के दोहे में रचना-काल का उल्लेख है, जिससे ज्ञात होता है कि सं० १५७५[3] मे यह रची गई थी।

१६वीं शती का यह शृंगार-काव्य एक धार्मिक प्रेम-कथात्मक रचना है, जिसमें बसन्त ऋतु के आगमन पर पांच सहेलियों—मालिन, तम्बोलिन, छीपीन, कलालिन और सोनारिन—की विरह-पीड़ा का चित्रण है। उक्त ग्राम बालाएं अपनी-अपनी मार्मिक व्यथा अपने जीवन-परिवेश की सुपरिचित घरेलू वस्तुओं एवं उनके प्रति आन्तरिक लगाव के माध्यम से प्रकट करती हैं। यह वर्णन रूपकात्मक हैं।

वर्षा ऋतु के आने पर पुनः कवि और इन पाँचों सहेलियों की भेंट होती है, तो कवि द्वारा इनकी प्रसन्नता के विषय में पूछे जाने पर उनमें से प्रत्येक अपने-अपने सुखमय जीवन के बारे में बतलाती हैं। रचना के अंत में कवि ने उपसंहार स्वरूप मंगल-कामना की है।

पंच-सहेली एक अनूठा शृंगार-काव्य है, जिसमें शृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन है। वैसे संयोग की अपेक्षा वियोग में कवि का मन अधिक रमा है। यह रचना मुक्तक कोटि की है, किन्तु इसमें कथा का एक निश्चित क्रम होने से इसे एकार्थकाव्य भी कहा जा सकता है यद्यपि कथा कल्पना-प्रसूत ही है।

छीहल जैन-भक्त कवि भी है। इस दृष्टि से विचार करने पर यह रचना एक सफल रूपक-काव्य भी ठहरती है, जिसमें जैन-रहस्यवाद को बड़ी सूक्ष्मता एवं कुशलता से कवि ने व्यक्त किया है। इस रचना का प्रकाशन भी हो चुका है।[4]

३. **बावनी** : इस रचना की प्रसिद्धि **छीहल-बावनी** के नाम से भी है। इस **बावनी** में ५२ दोहे होने का भ्रम होता है और कुछ लेखकों ने ऐसा उल्लेख किया भी है,[5] किन्तु इसमें ५३ छप्पय हैं, जो बड़े महत्त्व के हैं। कवि ने इसकी रचना सं० १५८४ वि० में की थी। इसके ५३वें छप्पय में कवि की उपाधि 'कवि-कंकण' भी प्रयुक्त हुई है, जिससे अनुमान होता है कि इस समय तक कवि काव्य-कारिता की दृष्टि से प्रसिद्ध हो चुका था और उसे 'कवि-कंकण' के रूप में अभिहित किया जाने लगा था।

इस रचना के आरम्भ में 'ॐ नमः सिद्धः' का क्रम है, जो मंगलाचरणात्मक है और जिनमें 'ॐकार' एवं जैन-देवों की वंदना की गई है। अन्तिम छप्पय में रचना-काल तथा कवि-वंश आदि का उल्लेख है। शेष छप्पयों में, जो नागराक्षरक्रम से रचित हैं, नीति एवं उपदेश-आदि का वर्णन हुआ है। रचना का प्रतिपाद्य विषय जैन-मतानुसार नीतिपरक एवं उपदेशात्मक है। रचना के छप्पय भावपूर्ण हैं जिनमें कवि की अभिव्यक्ति की नवीनता है, तथा छप्पयों में उसकी मौलिकता एवं सूक्ष्मता स्पष्ट झलकती है। अतः यह रचना सुन्दर एवं उत्तम है। सभी दृष्टि से छीहल कृत इस रचना का हिन्दी नीति-काव्य में एक विशेष स्थान है। इस प्रकार छीहल एक योग्य नीति काव्यकार ठहरते हैं। इसका भी प्रकाशन हो चुका है।[6]

४. **उदर-गीत** : इस रचना में केवल चार पद्य हैं, जो उत्कृष्ट भक्ति-गीत के सुन्दर उदाहरण हैं। इन गीतों में बतलाया गया है कि मानव अपनी माता के गर्भ में पिण्ड रूप में वास करने से लेकर मृत्यु-पर्यन्त अज्ञानी एवं विषयासक्त बना रहता है। वह जिन भगवान की भक्ति नहीं करता है इसीलिए वह जीवन्मुक्त नहीं हो पाता। रचना में उपक्रम एवं उपसंहार का अभाव है, अतः यह गीत-संकलन मात्र है। हाँ, इन गीतों से कवि का मर्मी संत रूप प्रकट है। ये गीत आत्म-अभिव्यंजना एवं स्व-संवेदन ज्ञान से संयुक्त हैं।

५. **पंथी-गीत** : इसमें कुल ६ पद्य हैं। यह एक लघु, किन्तु उत्तम, रूपक-काव्य है जिसके द्वारा सांसारिक प्राणी को सांसारिकता के मिथ्यात्व का उपदेश किया गया है। यद्यपि इस रूपक का मूल स्रोत **महाभारत**[7] है, किन्तु जो जैन-ग्रंथों में कुछ भिन्नता के साथ स्वीकृत है यहाँ भी यही स्थिति है। इसके प्रथम चार पद्यों में रूपक को कथात्मक पूर्णता मिली है। ५वें पद्य में कवि ने रूपक को स्पष्ट किया है और छठा पद्य उपदेश परक है। रूपक को एक लोकप्रिय कथा के रूप में उपस्थित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि कवि रूपक के माध्यम से संसारी जीव को जिनेन्द्र-भक्ति की ओर उन्मुख करना चाहता है। अतः छीहल की यह रूपक रचना अपनी सीमाओं में एक उत्तम लघु रूपक काव्य है, जो एक प्रकार से भक्ति-काव्य का ही द्योतक है।

६. **पचेन्द्रिय वेलि** : यह 'वेलि' परम्परा की चार पद्यों की भक्ति-परक रचना है। पद्यों में आत्म-संबोधन और जिनेश्वर की भक्ति के उपदेश निहित हैं। इस रचना के पद्यों में कवि ने संसार के माया-जाल और उसके आकर्षण से बचे रहने के लिए उपदेश किया है। अत: रचना उपदेशात्मक है। वेलि के इन पद्यों में कुंडलिया छंद प्रयुक्त हुआ है। कहीं-कहीं लोक प्रचलित रूपक और दृष्टान्त भी रखे गए हैं। निश्चय ही वेलि के ये गीत आध्यात्मिकता की दृष्टि से श्रेष्ठ भक्ति-गीत हैं।

७. **आत्म-प्रतिबोध जयमाल** : यह रचना हिन्दी की न होकर अपभ्रंश की है। इसमें कुल ३३ कड़वक हैं। आरम्भ में अरिहन्तों आदि की वंदना है। इसका प्रतिपाद्य विषय आत्मा का प्रतिबोधन-सम्बोधन व उपदेश आदि है। इसमें आत्मा के स्वरूप पर कवि ने विस्तार से विचार किया है। अत: आत्म-प्रबोधन ही इसका मूल विषय है। रचना का अन्त भी अरिहन्तों आदि के स्तवन से हुआ है। कवि की अन्य रचनाओं की अपेक्षा इसमें आध्यात्मिक तत्त्व ज्ञान का पुट अधिक है, किन्तु रचना का मुख्य उद्देश्य तत्त्व-निरुपण न होकर सरल-सहज ढंग से मन को प्रबोधित कर जिनेन्द्र-भक्ति की ओर उन्मुख करना ही है। इस दृष्टि से रचना सफल है।

छीहल प्रसिद्ध जैन-भक्त एवं मर्मी संत कवि थे। उनके काव्य का हिन्दी-काव्य के इतिहास में वही महत्त्व है, जो कबीर, दादू आदि संतों के काव्य का है। वर्ण्य-विषय की व्याप्ति के आधार पर उनका काव्य भक्ति प्रधान है और उनकी रचनाओं का एक मात्र उद्देश्य आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति है। तात्पर्य यह है कि समग्र रुप में कवि छीहल अपने समय के श्रेष्ठ भक्त कवि हैं और इस दृष्टि से उन्हें 'कवि-कंकण' कहा जाना उचित है।

उनकी रचनाओं का कला-पक्ष भी सशक्त है और काव्य-भाषा ब्रज है जिस पर राजस्थानी का प्रभाव लक्षित है।

सन्दर्भ :—

१. इस उद्धरण के प्रथम चरण में पाठ-भेद भी मिलते हैं।

२. **जैन गुर्जर कविओ**, भाग-३ (पृ० २११६) में श्री देसाई ने कवि का उल्लेख जैनेतर कवियों (सं० १४) में किया है।

(शेष पृष्ठ ३६ पर)

शोध सारांश

आचार्य हेमचन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

—डा० (श्रीमती) अनिता श्रीवास्तव

(गोरखपुर विश्वविद्यालय से १९९२ में पी-एच.डी. के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध । निदेशक : डा० विजय बहादुर राव ।)

जैन श्वेताम्बर परम्परा के आचार्य हेमचन्द्र के सम्बन्ध में सर्व प्रथम बूह्लर महोदय ने गुजरात एवं राजस्थान के जैन भण्डारों की छान-बीन करते हुए उस समय तक प्राप्त साधनों के आधार पर स्वदेश लौट कर स्वदेशवासियों के लिए जर्मन भाषा में जो भी लिखा वह १८८९ ई० में वियाना से प्रकाशित हुआ। सन् १९३६ ई० में मणिलाल पटेल ने उस का अंग्रेजी अनुवाद किया तथा उसके पश्चात् १९४० ई० में धूमकेतु और १९४२ में मधुसूदन ने गुजराती भाषा में आचार्य हेमचन्द्र के जीवन पर ग्रन्थ लिखे। कालान्तर में अन्य विद्वानों ने हिन्दी में भी उन पर ग्रन्थ लिखे।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में आचार्य हेमचन्द्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का आकलन प्राप्त साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर किया गया है। आचार्य के ग्रन्थों के

(पृष्ठ ३८ का शेष)

३. इस रचना की एक-दो प्रतियों में 'सम्वतपनरह चहुतरइ' पाठ भी मिलता है।

४. देखिये **भारतीय-विद्या**, भाग-२, अंक ४, जुलाई १९४३ ई०।

५. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, **हिन्दी-साहित्य का इतिहास**, पृ० १८३ (१२वां संस्करण)।

६. देखिये **शोध-पत्रिका**, वर्ष १७, अंक १-२, तथा **मरु-भारती**, जुलाई १९६६ ई०।

७. **महाभारत**, स्त्री पर्व, धृतराष्ट्र को बिदुर का उपदेश : संसार-अरण्य का निरुपण।

८. डॉ० वासुदेव सिंह ने इसे पुरानी हिन्दी की रचना माना है, देखिये **अपभ्रंश और हिन्दी में जैन-रहस्यवाद**, पृ० ६८।

आधार पर प्राप्त सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों की पुष्टि पुरातात्विक एवं अन्य साहित्यिक साक्ष्यों से करते हुए तत्कालीन गुजराती समाज के समग्र जीवन पर एक साथ प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

आचार्य के जन्म के सम्बन्ध में सभी साक्ष्य एक मत हैं। इनका जन्म गुजरात प्रदेश में अहमदाबाद से ६० मील दक्षिण–पश्चिम में भाधर नदी के तट पर बसे धुन्धुका नामक ग्राम में १०८८-८९ ई० में हुआ था। आचार्य के पिता चाचिग एवं माता पाहिणी देवी क्रमशः शैव मत एवं जैन धर्म के अनुयायी थे। जन्म से ही प्राप्त धार्मिक सहिष्णुता का यह अद्भुत सामंजस्य आचार्य हेमचन्द्र के भावी जीवन की आधारशिला बन गया। हेमचन्द्र के बचपन का नाम चांगदेव था। इनकी प्रथम दीक्षा आठ वर्ष की आयु में गुरू देवचन्द सूरि के द्वारा हुई और इनका नाम सोमचन्द्र पड़ा। चांगदेव की दूसरी दीक्षा २१ वर्ष की आयु में हुई और अब वह सोमचन्द्रसूरि अथवा आचार्य हो गये। ११०९ ई० में इनका पुनः नाम परिवर्तन हुआ और वह हेमचन्द्र अथवा हेमचन्द्रसूरि कहलाने लगे।

हेमचन्द्र एवं तत्कालीन चौलुक्य नरेश जयसिंह सिद्धराज के मध्य मित्रवत् सम्बन्ध था। जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् राजा कुमारपाल ने भी आचार्य के सम्मान में वृद्धि की। कुमारपाल इन्हें महान धर्म गुरू ही नहीं वरन् राजनैतिक क्षेत्र में भी अपना पथ-प्रदर्शक मानता था। इनका देहावसान ११७३ ई० में ८४ वर्ष की आयु मे हुआ।

किम्वदन्ती है कि हेमचन्द्र ने साढ़े तीन करोड़ ग्रन्थों की संरचना की। यद्यपि इस उक्ति में अतिरंजना है फिर भी इन्होंने विशाल ग्रन्थ राशि की रचना की होगी इस को मानना सर्वथा उपयुक्त होगा। **प्रभावक चरित्र** में १२ ग्रन्थों के नाम गिनाये गये हैं।[2] आचार्य की प्रथम रचना व्याकरण ग्रन्थ **सिद्धहेमशब्दानुशासन** जयसिंह के विशेष आग्रह पर प्रणीत की गयी थी। जैयसिंह सिद्धराज के ही काल में व्याकरण पर टीकाएं भी लिखी गयीं। **अनेकार्थ-संग्रह** के साथ ही **अभिधानचिन्तामणि, देशीनाममाला** तथा **निघण्टु** जैसे कोष-ग्रन्थ भी इसी काल में रचे गये। **निघण्टु शास्त्र** को **वैद्यक कोष** भी कहते हैं। **काव्यानुशासन विवेक, छन्दोऽनुशासन** एवं **प्रमाण मीमांसा** भी सिद्धराज के काल के हैं। प्राकृत भाषा के व्याकरण की विवेचना करने के कारण व्याकरण ग्रन्थ के अन्तिम

अध्याय को प्राकृत व्याकरण भी कहा जाता है। व्याकरण के नियमों का भाषा गत प्रयोग समझाने के लिए आचार्य ने दो भागों में **द्वयाश्रय-महाकाव्य** का प्रणयन किया। इसके द्वितीय भाग प्राकृत द्वयाश्रय काव्य को **कुमारपालचरित्र (कुमार-पालचरिय)** भी कहते हैं। द्वयाश्रय महाकाव्य द्विअर्थक है। इसमें व्याकरण नियम के साथ-साथ चौलुक्य वंश के इतिहास का भी परिचय मिलता है।

प्राचीन काल में पाणिनि का व्याकरण **अष्टाध्यायी** काफी लोक प्रिय था। हेमचन्द्र के पूर्व एवं पाणिनि के पश्चात् कातन्त्र, शाकटायन, देवनन्दी, जैनेन्द्र एवं मालवा में भोज के व्याकरण **सरस्वती कंठाभरण** का प्रचलन था। इन सभी की तुलना में **सिद्धहेमशब्दानुशासन** एक पंचांग एवं पूर्ण व्याकरण ग्रन्थ है। साथ ही इसमें प्राकृत एवं अपभ्रंश व्याकरण भी उपलब्ध कराया गया है। **छन्दोऽनुशासन** एवं **काव्यानुशासन** आचार्य के व्याकरण को और भी समृद्ध बना देते हैं। **छन्दोऽनुशासन** में गाथा छन्द का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। इसके अतिरिक्त शार्दूल–विक्रीड़ित आदि अन्य सभी छन्दों का प्रयोग सफलतापूर्वक किया गया है। अलंकार ग्रन्थ **काव्यानुशासन** में अलंकारों के सौन्दर्य पक्ष पर आचार्य ने विशेष बल दिया है। ६१ अर्थालंकारों के स्थान पर २९ अर्थालंकारों का प्रयोग सर्वथा नवीन है। हेमचन्द्र ने अलंकारों को रसाश्रित माना है। उनके विचारानुसार रस की वृद्धि करना अलंकारों का गुण है और रसाभाव अलंकार का दोष। प्रतिभा, निपुणता एवं शिक्षा के स्थान पर केवल "प्रतिभा" को ही उन्होंने काव्य का प्रधान कारण माना है।

अपभ्रंश को पुनर्जीवित कर हेमचन्द्र ने साहित्य की अपूर्व सेवा की। **शब्दानुशासन, छन्दोऽनुशासन, लिंगानुशासन** तथा **काव्यानुशासन** एवं **द्वयाश्रय महाकाव्य** मिलाकर, सम्पूर्ण लक्षण एवं साहित्य विद्या का क्षेत्र पूरा हो जाता है।

कुमारपाल के काल में जनसाधारण के उपदेशार्थ मुख्यत: धार्मिक ग्रन्थों की ही रचना की गई। **योगशास्त्र** गृहस्थों को श्रावक धर्म की शिक्षा देने हेतु प्रणीत किया गया। भक्ति काव्य **वीतरागस्तोत्र, अर्हन्तस्तोत्र** एवं **महावीरस्तोत्र** इसके प्रमाण हैं। **द्वात्रिंशिका** दो लघु काव्य हैं। **अन्ययोगव्यवच्छेद** तथा **अयोग-व्यवच्छेद** में क्रमश: वैशेषिक, सांख्य एवं बौद्ध मतों का खण्डन एवं स्वधर्म मत का मण्डन किया गया है। इन कृतियों में पूर्ववर्ती आचार्यों के जैन सिद्धान्तों

को स्वीकारते हुए अपने मत का प्रतिस्थापन करना आचार्य श्री की मौलिक देन है। अनेकान्तवाद की सिद्धि में नयवाद एवं भंगवाद का समन्वय स्वयमेव हो जाना आचार्य की जैन दर्शन को अद्भुत देन है।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र की रचना कुमारपाल के विशेष आग्रह पर की गई थी। इसमें जैन तीर्थंकरों के जीवन पर प्रकाश तो डाला ही गया है, साथ ही वासुदेव, वसुदेव, राम, लक्ष्मण एवं चन्द्रगुप्त मौर्य आदि का भी उल्लेख किया गया है। गाथा साहित्य को यह एक महत्वपूर्ण देन है। **शुकसप्तशती** तथा **पंचतन्त्र** का सामंजस्य भी इसमें है।

आचार्य के धार्मिक ग्रन्थों से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि चौलुक्यों का राजधर्म शैव होते हुए भी तत्कालीन गुजरात में सभी धर्म समान रूप से फलफूल रहे थे। **द्वयाश्रय काव्य** में शिव को ही सृष्टि का निर्माता एवं संहारक दोनों कहा गया है। मूलराज ने शिव का स्वप्न दर्शन किया, सिद्धराज ने पुत्र प्राप्ति हेतु सोमनाथ के दर्शन किये तथा कुमारपाल ने सोमनाथ मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया— ये सारी सूचनायें शैवधर्म की लोकप्रियता को दर्शाती हैं। **द्वयाश्रय** में उल्लिखित कृष्ण, मत्स्यावतार एवं कंसबध आदि से गुजरात में वैष्णव धर्म के अस्तित्व का पता तो चला है परन्तु पुरातात्विक साक्ष्य के अभाव में इस पर पूर्ण प्रकाश नहीं पड़ सका हैं। बारहवीं शताब्दी के गुजरात में सूर्य पूजा भी अत्यन्त लोकप्रिय थी। **कुमारपालचरित्र** में कुमारपाल द्वारा प्रयुक्त स्वस्तिवचन तथा शान्तिवचन मन्त्र सूर्योपासना के समय उच्चारित किये जाते थे।[3] **सरस्वती पुराण** में सहस्रलिंग झील के तट पर जयसिंह द्वारा निर्मापित सूर्य मन्दिर का उल्लेख किया गया है। देवी-पूजा प्राचीन कालीन मातृ-पूजा का ही रूप थी। चण्डी, एण्डी, दुर्गा एवं कंठेश्वरी आदि देवियां[4] गुजरात में पूजित थीं, साथ ही उन्हें बड़े पैमाने पर बलि चढ़ाने का अनुष्ठान भी किया जाता था। हेमचन्द्र ने अपने प्रभाव का प्रयोग कर पशुबलि के स्थान पर अन्नमय नैवेद्य चढ़ाने की व्यवस्था कर हिंसा को अपराध घोषित करवा दिया।[5]

इन्द्रोत्सव की सूचना **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** में मिलती है। जयसिंह के गाला अभिलेख, वेरावल प्रशस्ति व गणेश्वर शिलालेखों से गणेश-पूजा की पुष्टि होती है। बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में साक्ष्यों के अभाव इस तथ्य को घोषित करते हैं कि बौद्ध धर्म में लोगों की आस्था पहले जितनी नहीं रह गई थी।

श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के अनुयायी हेमचन्द्र का प्रभाव सिद्धराज जयसिंह एवं कुमारपाल दोनों पर ही था। जयसिंह की माता मगयल्लादेवी की आस्था जैन श्वेताम्बर सम्प्रदाय में थी, अतएव जैन धर्म को विकास की, सशक्त पृष्ठभूमि मिलना स्वाभाविक ही था। कुमारपाल के काल में तो गुजरात जैन धर्म का गढ़ बन गया था। कुमारपाल ने द्वादश व्रत के पालन की प्रतिज्ञा की, शत्रुंजय पहाड़ी पर ऋषभनाथ मन्दिर तक पहुँचने के लिए सीढ़ियां बनवाने हेतु अमर को सौराष्ट्र का सूबेदार नियुक्त किया, कुमार विहार, मूष्कि विहार एवं झोलिका विहार आदि जैन मन्दिरो का निर्माण करवाया तथा **महावीरचरित** की घोषणा की। कुमारपाल ने प्रत्येक गांव में जैन मन्दिर, चैत्य या विहार बनवाये, यह अतिशयोक्ति पूर्ण प्रतीत होता है तथापि मेरुतुंग की सूचनानुसार १४४४ मन्दिरों के निर्माण को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

अष्टान्हिका, पंचकल्याणी, दीपावली एवं चन्द्रायण आदि जैन त्योहार तो धूमधाम से मनाये ही जाते थे, साथ ही रथ महोत्सव को सार्वजनिक रूप से मनाने की आज्ञा प्रदान कर कुमारपाल ने जैनों का उचित सम्मान किया। सत्रागार तथा पोशधशाला की व्यवस्था का भार अमर तथा आचार्य हेमचन्द्र पर था। तत्कालीन समाज में अनेक देवी-देवताओं तथा धर्मों के अस्तित्व का अद्भुत सामंजस्य तो था ही, साथ ही साथ लोक-विश्वास, अन्धविश्वास, जादू एवं मन्त्र-तन्त्र आदि भी समाज में व्याप्त थे। चौलुक्यराज कुमारपाल के भावी राजा बनने की भविष्यवाणी स्वयं आचार्य ने की थी। **द्वयाश्रय काव्य** के अनुसार बर्बरक राक्षस के पास जादूई शक्ति का असीम खजाना था।

तात्पर्य यह है कि चौलुक्य कालीन गुजरात का धार्मिक स्थल अपनी उन्नत अवस्था में था। शिक्षा एवं संस्कृति का सर्वत्र प्रसार था, फिर भी प्राचीन काल से चले आ रहे तन्त्र-मन्त्र एवं अन्धविश्वासों ने बारहवीं शती के मानव मस्तिष्क को बुरी तरह से जकड़ रखा था। ऐसी स्थिति में मोक्ष प्राप्ति का सरल मार्ग त्रिरत्न ही बन गया था। आचार्य ने मोक्ष-प्राप्ति के अधिकार में पुरुषों के बराबर ही स्त्रियों की भागीदारी भी निश्चित की तथा "अदत्तादान" निषेध द्वारा विधवाओं का जीवन सुरक्षित किया।[6]

यदि इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखें तो आचार्य हेमचन्द्र की कृतियां अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होती हैं। किसी भी समाज की उन्नति एवं शान्ति उसकी

राजनैतिक स्थिति की सुदृढ़ता में निहित होती है। **द्वयाश्रय महाकाव्य** तथा **महावीर चरित** में चौलुक्य राजवंश के मूलराज से कुमारपाल तक राजाओं के कार्यकलापों का विशद वर्णन मिलता है। साथ ही शासन-प्रणाली और सैन्य-संगठन पर भी प्रभूत प्रकाश पड़ता है।

हेमचन्द्र कालीन समाज व्यवस्था प्राचीन वैयाकरणों की सामाजिक व्यवस्था से भिन्न थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र का अस्तित्व था। अन्तर्जातीय विवाह के कारण जातियों एवं उप-जातियों का जन्म हो चुका था। कायस्थ नामक वर्ग भी पनप रहा था जिसकी रुचि लेखन कार्य में थी। जाति व्यवस्था का आधार श्रम विभाजन के साथ-साथ जन्म भी होने लगा था। जाति के अन्तर्गत पितृवंश एवं गुरुवंश की परम्परा को भी सम्मिलित कर लिया गया था। हेमचन्द्र का विचार है कि गोत्र की विभिन्नता से उत्पन्न जातियों का मुख्य आधार श्रम विभाजन ही था। ऐसा प्रतीत होता है कि हेमचन्द्र कालीन सामाजिक वर्ण-व्यवस्था वैदिक काल की वर्ण-व्यवस्था की अपेक्षा शिथिल हो गई थी। वर्ण-व्यवस्था की भांति आश्रम-व्यवस्था की मान्यता भी ढह चुकी थी। अब गृहस्थ एवं श्रमण ये दो ही आश्रम रह गये थे।

कन्या की स्थिति शोचनीय नहीं थी। पुत्र ही पिता की सम्पत्ति का अधिकारी होता था तथापि नारी पूजनीया थी। आचार्य ने व्यक्तिगत विकास के लिए आचार-विचार की शुद्धता पर बल दिया है।

कृषि कर्म ही आर्थिक सम्पन्नता का आधार था। शारदा, हेमन्ते, ग्रैष्मक तथा यज्जक फसलों के नाम हैं जिनके अन्तर्गत मूंग, ब्रीही, प्रियंगू, यव, तिल एवं चण: आदि अन्न होते थे। शाक तथा फल-फूलों के वृक्ष भी लगाये जाते थे। खेती योग्य भूमि मिट्टी, बुआई, जुताई एवं सिंचाई आदि की दृष्टि से कई श्रेणियों में बँटी थी जिसका उल्लेख **शब्दानुशासन** में हेमचन्द्र ने किया है। "कृषियोग्यक्षेत्रम्" खेती योग्य बनाई जा सकने वाली भूमि को कहा जाता था। कृषि व्यवस्था उन्नत अवस्था में थी। स्पष्ट है कि खान-पान में विभिन्नता होगी। अपूप, पिठ्ठ, पुरोजरा, सत्तु, दूध, दही एवं मांस-मदिरा भी खान-पान में प्रयुक्त होते थे जिनका उल्लेख **शब्दानुशासन** एवं **देशीनाममाला** में आचार्य ने यत्र-तत्र किया है। खान-पान थोड़े से नाम के अन्तर के साथ आधुनिक युग की भांति ही थे।

शरीर को अलंकृत करने हेतु भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्रालंकार का प्रचलित होना इस बात का स्पष्ट संकेत देता है कि १२वीं शती के गुजरात में वस्त्र एवं आभूषण निर्माण की कला अत्यन्त परिष्कृत थी। कौशेय, औम, और्णक तथा कर्पास वस्त्रों का प्रयोग विभिन्न आकृतियों एवं रंगों में किया जाता था। **द्वयाश्रय काव्य** एवं **शब्दानुशासन** से ज्ञात होता है कि लोग मेहंदी, कुमकुम के साथ-साथ कंठ, बाहु, भुज एवं ग्रीवा आदि में स्वर्ण, रजत, मोती एवं धातु के आभूषण पहनते थे। **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** तो तिलक को स्त्रियों का चौदहवां आभूषण बताता है।

चौलुक्य काल में गुजरात में पाटन, स्तम्भतीर्थ, भृगपुर, द्वारिका, मोटा तथा गोपनाथ आदि बन्दरगाहों से विदेशी व्यापार बड़े पैमाने पर होता था। **शब्दानुशासन** में प्रयुक्त व्यवहार शब्द व्यापक स्तर के आयात-निर्यात का संकेत करता है। **द्वयाश्रय काव्य** में वर्णित निष्क एवं कर्ष आदि के सिक्कों की पुष्टि अन्य साहित्यो के अतिरिक्त चौलुक्य शिलालेखों से भी होती है।[7]

आचार्य की कृतियों ने आचार्य के बहुआयामी व्यक्तित्व का चित्रण तो किया ही है, साथ ही इतिहास को भी बहुत कुछ दिया है। उनके काव्य में उल्लिखित ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। हेमचन्द्र की तुलना मौर्य कालीन आचार्य चाणक्य से की जाय तो अनुचित न होगा। चाणक्य की भांति ही इस महान आचार्य ने राजनीति को धर्म से अनुशासित कर राजा को लोकप्रिय एवं राज्य को अक्षुण्ण बनाया। उन्होंने १२वीं शताब्दी के गुजराती समाज में कुछ आमूल-चूल परिवर्तन कर समाज को सुधारने का प्रयत्न किया। चमत्कार विद्या को जानते हुए भी इसका प्रयोग नहीं किया। उनका विश्वास था कि व्यक्ति रत्नत्रयी द्वारा ही आत्मशुद्धि कर सकता है। आत्मशुद्धि आनन्द है, ज्ञान है और मोक्ष का मार्ग है। यही था सन्देश ज्ञान पथ के उस महान सन्यासी यात्री का।

सन्दर्भ :—

१. **प्रभावक चरित**, सं० मुनि जिनविजय, पृ० ८४

२. **प्रभावक चरित**, श्लोक ८३२-८३६

३. **प्राकृत द्वयाश्रय**, सर्ग ४, श्लोक ४६-६६, तथा **संस्कृत द्वयाश्रय**, सर्ग २०, श्लोक १-३४

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

Save Planet Through Eco—Jainism

—Sri Suresh Jain

Despite the international meet at Stockholm in 1972 and at Rio in 1992 environment of our mother earth further deteriorated and the ecological imbalance intensified. To achieve alround success in this field, it is necessary that environmental commitments must acquire cultural and spiritual base. Religious, spiritual and cultural traditions can contribute to a great extent for the protection of environment. Regenerated and revitalised ancient values may bring revolution in the environmental improvement.

Jainism attaches greatest importance for environmental concern. Lord Risabhnath, the first Tirthankara of the Jains, laid down sound principles in ancient India for the preservation of environment and the maintenance of ecological equilibrium. The concept of sustainable development is well built in daily cultural routine of the Jains. Jainism provides positive response for sustainable environmental development. By ordaining to respect smallest animal, plant and even the microbes, it lays down its unique concept for the protection of our environment and for the maintenance of ecological equilibrium of our universe.

Lord Mahavira declared 2500 years ago that biologically there is no difference between man and tree. Both have life, both take birth, both take food to live, both die without food. The scientists have established that water filter system of the Jains contributed to a great extent for their good health This system is a symbol of health and modern civilization.

We must make constant effective efforts to blend spiritual principles of Jainism with those of modern science. We must place before the world in a scientific manner the Jain principles

of vegetarianism and right form of livelihood with limited needs. We must place before the world forcefully the message of Bhagwan Mahavira : Harmonious interdependence of all the creatures in the world is the basis of existence. The Jain traditions are fully dedicated to clean environment, enviro-development and enviro-protection.

Every member of the Jain society compulsorily offers good wishes daily in the morning for the welfare of plants, animals and all human beings. He prays that it may rain timely and sufficiently. There should not be drought or excess rains. There should not be any epidemic diseases. All the constitutional and statutory authorities must perform their duties and exercise their powers with honesty and compassion.

Every responsible Jain family observes the following prohibitions strictly and regularly :—

(1) Nobody should wash dirty clothes in the rivers to save micro-organisms of the river from annihilation.

(2) Nobody should use unfiltered/impure water.

(3) After drawing water from any source, everybody should endeavour to leave residual unfiltered water at the original source of water so that micro-organisms may live smoothly in their own habitat and maintain ecological balance.

(4) Nobody should waste even a drop of water.

(5) Nobody should pluck the leaves and flowers from plants and trees.

(6) Nobody should waste any unit of heat and light energy.

Jainism lays down social and religious prohibition for misuse, excess use and destruction of basic constituents of environment : earth, water, air, fire, vegetation, and ordains for their most minimum use, because every such element has life

which must be respected Every eco-Jain after close of the day, daily repents even for the most minimum use of earth, air, water, fire (energy) and vegetation. This is the most pious reverence to the nature. Thus Jainism promotes intellectual, spiritual and moral support for the environmental protection.

Digambara Jain Monks are supposed to be living statues of environment and ecology. They appear to embody and personify principles of eco-Jainism. They are required to maintain balance of natural elements for the welfare of the whole universe, what to say of only humanity, through the vows taken by them. They keep only 'Kamandal' (water-pot) made of wood and 'Pichchhi' made of peacock feathers, with them. Acharya Vidya Sagar ji is an eloquent example of a Digambara Jain Saint in the estimation of his devout followers.

We should take a balanced, nutritious, fresh and clean vegetarian diet and should inculcate and imbibe healthy food habits. If we follow such advice strictly, we can reduce drug and doctor dependence to a bare minimum. Modern research has established that ministrations of doctors account for less than ten per cent of an individual's well being. More than 90 percent is determined by factors like eating habits, smoking, exercise, stress etc. over which doctors hardly have any control.

The Jain society is primarily a business society. Therefore, it is our pious duty to open and run efficiently eco-friendly food shops in a most modern and scientific manner. If possible, we must subsidise food items and encourage their sales to consumers and foster their marketability.

The American College of Surgeons has admitted that about 30 percent of the surgical operations (about 45 lakh operations) are completely unnecessary and an additional 50 percent are beneficial but not essential to save or extend life. Such opera-

tions are intended mainly to sharpen the surgeon's skill, treating the patients as guinea pigs. No figures are available for India, but situation can't be better here. A paper published in 1977 by John and Sonia Mckinley makes the astonishing claim that wherever there was a doctors' strike as in U. S., Canada, England and Israel, the death rate in the affected areas actually fell. Some medical researchers have found that one of ten patients in Indian hospitals suffers from adverse drug reaction.

Jain culture can play a key role in economic development that enables people to live happily, without any tension and in harmony with others in the community and with nature. We must design such economic development which may take care of cultural patterns and sensibilities.

It is most essential to promote the nature conservation and environment protection for sustainable and equitable development of our society and our nation. Not only the survival of our culture and our nation but the very survival of our planet itself is under greater threat than ever before. Mankind is destroying the environment at such a rate that nature can no longer fight back alone and replenish it. Before it is too late, we must wake up to the biggest challenge, the survival of the earth itself.

(पृष्ठ ४५ का शेष)

४. **द्वयाश्रय काव्य**, सर्ग ३, श्लोक ३६

५. राजशेखर: **प्रबन्धकोष**, पृ० ४७; जयसिंह सूरि : **कुमारपाल भूपालचरित**, ८, ६०६-१०; जिनमदन : **कुमारपाल प्रबन्ध**, पृ० ६१

६. **मोहराजपराजय**, चतुर्थ अंक; **द्वयाश्रय काव्य**, सर्ग २०, श्लोक ३६ तथा ८५; **महावीरचरित**, ११/६४

७. आई०ए०, ६, पृ० २०२, २७२, तथा आई०ए०, १, पृ० ५८, ५६, ३७७; भावनगर इन्सक्रिप्शन,, पृ० १५८; मेरूतुंग : **प्रबन्धचिन्तामणि** (टानवी), पृ० ८, १०, १०४

समणसुत्तं

हिन्दी पद्यानुवाद(क्रमशः)—श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास'

१०. संयम सूत्र

१२२. अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नंदणं वणं ॥१॥
नित्य वैतरणी नदी निज आत्मा को जानिये ।
कूट शाल्मली विटप इस को सदा ही जानिये ॥
काम दुहा धेनू है निज आत्मा ही सर्वदा ।
और नन्दन वन की जानो आत्मा ही सम्पदा ॥१॥

१२३. अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ ॥२॥
कर्म कर्ता आत्मा ही स्वयं है संसार में ।
और उनको भोगता वह ही जगत व्यवहार में ॥
सन्मार्ग में स्थित आत्मा निज मित्र जानो सर्वदा ।
दुष्कर्म में संलग्न वह निज शत्रु बन जाता सदा ॥२॥

१२४. एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इन्दियाणि य ।
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी ! ॥३॥
शत्रु वही है आत्मा जिस पर विजय नहीं प्राप्त है ।
शत्रुता अजित कषाय इन्द्रियों में व्याप्त है ॥
जीत उन को धर्म के अनुसार निज आचार में ।
कर रहा हूं नित्य विचरण हे मुने ! संसार में ॥३॥

१२५. जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥४॥
दस लाख योद्धाओं से भी दुर्जेय युद्ध में नर लड़े ।
बलवान शत्रु को हराकर जय श्री धारण करे ॥
उस से विजय है श्रेष्ठ उसकी जो स्वयं से लड़ रहा ।
और अपने आप पर ही प्राप्त जय है कर रहा ॥४॥

१२६. अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ ।
अप्पाणमेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमेहए ॥५॥
युद्ध निज से ही सदा संसार में करते रहो ।
बाह्य युद्ध नहीं लाभप्रद यह चित्त में धरते रहो ॥
स्वयं को ही जीतना सन्मार्ग है संसार में ।
सत्य सुख मिलता है केवल एक इस आचार में ॥५॥

१२७. अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो ।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य ॥६॥
आत्मा को विजित करना भाव वांछित मानिये ।
जय प्राप्त करना स्वयं पर अति कठिन यह भी जानिये ॥
जान लो इस लोक में परलोक में भी सर्वदा ।
प्राप्त करता सुख केवल आत्म जेता ही सदा ॥६॥

१२८. वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य ।
माऽहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहिं वहेहि य ॥७॥
इष्ट है मेरे लिए संयम अरू तप से तथा ।
दमन कर लेना स्वयं का इस जगत में सर्वथा ॥
मैं कभी बन्धन तथापि वध के द्वारा कहीं ।
दमित हो पाऊं कदापि अन्य प्राणी से नहीं ॥७॥

१२९. एगओ विरइं कुज्जा, एगओ य पवत्तणं ।
असंजमे नियत्तिं च, संजमे य पवत्तणं ॥८॥
निवृत्त सदा मानव को होना चाहिये इक ओर से ।
मन पुनः अपना लगा दे दूसरे ही छोर से ॥
इष्ट निवृत्ति असंयम की रहे संसार में ।
संलग्न मन करते रहो संयम में नित्याचार में ॥८॥

१३०. रागे दोसे य दो पावे, पावकम्म पवत्तणे ।
जे भिक्खू रुंभई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥९॥
पाप कर्मों के प्रवर्तक जिन से सब संताप हैं ।
जग में दो ही राग एवं द्वेष केवल पाप हैं ॥
करता रहे निरोध इन का नित्य जब आचार में ।
मुक्त होकर वह मुनि रुकता नहीं ससार में ॥९॥

१३१. **नाणेण य झाणेण य, तवोबलेण य बला निरुभंति ।**
इंदियविसयकसाया, धरिया तुरगा व रज्जूहिं ।।१०।।
ज्ञान से अरु ध्यान से एवं तपो बल से सदा ।
रोक देने चाहिये बल पूर्वक ही सर्वदा ।।
इन्द्रियों के सब विषय चारों कषाय भी तथा ।
रज्जु तथा शक्ति से मानव अश्व को रोके यथा ।।१०।।

१३२. **उवसामं पुवणीता, गुणमहता जिणचरित्तसरिसं पि ।**
पडिवातेंति कसाया, किं पुण सेसे सरागत्थे ।।११।।
महा गुणी उपशान्त जिस ने कर कषायों को दिया ।
जिनवर प्रभु सम आचरण भी जिसने धारण कर लिया ।।
पथ से उसे भी भ्रष्ट जब करती कषायें यह रहें ।
शेष जिस में राग उस मुनि के विषय में क्या कहें ।।११।।

१३३. **इह उवसंतकसाओ, लहइ अणंतं पुणो वि पडिवायं ।**
न हु मे वीससियव्वं थेवे वि कसायसेसम्मि ।।१२।।
जो जन कषायों का करें उपशमन निज आचार में ।
वे अनन्त प्रतिपात पा सकते हैं इस संसार में ।।
शेष जिस नर में कषायों का अभी तक वास है ।
उस पुरुष के आचरण का क्या भला विश्वास है ।।१२।।

१३४. **अणथोवं वणथोवं, अग्गीथोवं कसायथोवं च ।**
न हु मे वीससियव्वं, थोवं पि हु तं बहु होइ ।।१३।।
ऋण को थोड़ा घाव को छोटा कभी न जानिये ।
तनिक अग्नि को कषायें भी न थोड़ी मानिये ।।
अल्प इन को मान न अवहेलना से चित्त भरें ।
थोड़े से बढ़ती है यह सभी विश्वास इनका न करें ।।१३।।

१३५. **कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो ।**
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्वविणासणो ।।१४।।
क्रोध से ही नष्ट प्रीति हो सदा संसार में ।
मान से होता विनय का नाश है आचार में ।।
माया से मैत्री नष्ट हो जाती है इसको जान लो ।
लोभ सब कुछ नाश करता तथ्य यह पहचान लो ।।१४।।

१३६. उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ।
मायं चऽज्जवभावेण, लोभं संतोसओ जिणे ॥१५॥
क्रोध शत्रु का क्षमा से हनन मानव कीजिये ।
मान पर मार्दव के द्वारा प्राप्त जय कर लीजिये ॥
जीत लो माया को आर्जव के सदा प्रयोग से ।
विजित कर लो लोभ को संतोष के उपयोग से ॥१५॥

१३७. जहा कुम्मे सअंगाई, सए देहे समाहरे ।
एवं पावाइं मेहावी, अज्झप्पेण समाहरे ॥१६॥
तन के अपने अङ्ग सारे जीव कछुआ सर्वदा ।
ज्यों समा लेता है अपनी देह के भीतर सदा ॥
इस भांति मेधावी पुरुष पापों को भी हर ओर से ।
अध्यात्म के द्वारा समेटे नित्य ही हर छोर से ॥१६॥

१३८. से जाणमजाणं वा, कट्टु आहम्मिअं पयं ।
संवरे खिप्पमप्पाणं, बीयं तं न समायरे ॥१७॥
कार्य कुछ अधर्म का यदि ज्ञान से अज्ञान से ।
हो गया हो जब कभी भी भूल कर इन्सान से ॥
उस क्रिया से मुक्त जल्दी आत्मा को कीजिये ।
फिर कभी न कार्य हो वह भाव मन भर लीजिये ॥१७॥

१३९. धम्मारामे चरे भिक्खू, धिइमं धम्मसारही ।
धम्मारामरए दंते, बम्भचेरसमाहिए ॥१८॥
भिक्षु सदा विचरण करे वह धर्म के उद्यान में ।
धृति मान एवं धर्मरथ का सारथि हो ध्यान में ।
संलग्न धर्माराम में अरु दान्त चित्त होवे सदा ।
मन करे ब्रह्मचर्य व्रत में वह समाहित सर्वदा ॥१८॥

साहित्य सत्कार

तीर्थंकर वर्धमान महावीर—ले० पं० पद्मचन्द्र शास्त्री, प्रकाशक—जैन विद्या संस्थान, श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी (राज०), द्वितीय संस्करण १९९४, पृष्ठ सं० ११४, मूल्य-५/-

विद्वान लेखक ने इस पुस्तक में अन्तिम जैन तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के प्रामाणिक जीवन चरित्र तथा उनकी धर्म देशना को दिगम्बर जैन पौराणिक कथ्य के आधार पर प्रस्तुत किया है। पुस्तक का प्रारम्भ जैन धर्म की प्राचीनता के सबल प्रमाणों से किया गया है तथा समापन जैन धर्म के सिद्धान्तों के संक्षिप्त पर सार पूर्ण विवेचन से। इस पुस्तक की रचना प्राकृत साहित्य एवं जैन दर्शन के मर्मज्ञ विद्वान पंडित जी ने पू० आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज की प्रेरणा से भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण वर्ष के उपलक्ष में की थी तथा उसके प्रथम संस्करण का प्रकाशन वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर द्वारा वर्ष १९७४ में किया गया था। पुस्तक बहुत लोक प्रिय सिद्ध हुई और प्रथम संस्करण शीघ्र ही समाप्त हो गया था। पुस्तक की मांग को देखकर अब दूसरे संस्करण का प्रकाशन जैन विद्या संस्थान, श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी, द्वारा किया गया है।

मुनि श्री काम कुमार नन्दि जी द्वारा रचित सात पुस्तिकाएं :—

(i) **श्रमण वाणी**—पृष्ठ १००, प्रकाशक-श्री नेमचन्द्र जैन, सुखपाल चन्द्र जैन, महिपाल जैन, नेम भवन, प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर,-२५१००२

इस पुस्तक में पूज्य मुनि श्री के विभिन्न स्थानों पर दिए गए कतिपय प्रवचनों का सार संकलित किया गया है। प्रवचनों के कुछ शीर्षक हैं—जैन धर्म एवं विज्ञान, अहंकार ही मनुष्य के पतन का कारण है, जैन एवं रात्रि भोजन, उपवास का अनुचिन्तन, मुक्ति पथ में चरित्र का महत्त्व, आदि।

(ii) **दश धर्म प्रवचन**—पृष्ठ १००, प्रकाशक-सन्मति प्रकाशन, मुजफ्फर नगर

इस पुस्तक में मुनि श्री द्वारा सरल सुबोध भाषा में उत्तम क्षमादि दश धर्मों का प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक धर्म के अन्त में महाकवि रइधु कृत अपभ्रंश भाषा के दोहों में विवेचन देने से कृति का महत्त्व और बढ़ गया है।

(iii) **अध्यात्म रस मञ्जरी**—पृष्ठ ४०, प्रकाशन–प्राप्ति स्थान—श्री विनोद जैन, वी. के. जे. बिल्डर्ज एंड कन्ट्रेक्टर्स (प्रा.) लि., १६२/३/१ राजपुर रोड, देहरादून–२४८००१

इस पुस्तिका में मुनि श्री कृत ३८ भजन स्तुतियों को संकलित किया गया है।

(iv) **जो जैसा भावै सो तैसा पावै**—पृष्ठ ३२, प्राप्ति स्थान वही

इस लघु पुस्तिका में मुनि श्री ने प्रश्नोत्तर के माध्यम से संक्षेप में समझाया है कि किस क्रिया से कौन से कर्म का बन्ध होता है तथा उसका क्या प्रतिफल होता है।

(v) **कुन्थु कनक धर्म विज्ञान**—द्वितीय पुष्प, प्राप्ति स्थान वही

इस लघु पुस्तिका में मुनि श्री ने प्रश्नोत्तर शैली में देव दर्शन, सम्यक् देव शास्त्र गुरू का स्वरूप, सप्त व्यसन, बारह भावना व सोलह कारण भावना का स्वरूप, सरल सुबोध भाषा में समझाया है। पुस्तिका बालकोपयोगी है।

(vi) **जैन धर्म की मौलिक विशेषताएं**—पृष्ठ ४०, प्राप्ति स्थान वही

इस लघु पुस्तिका में मुनि श्री ने जैन धर्म, दर्शन और संस्कृति की कतिपय मौलिक विशेषताओं पर सरल सुबोध भाषा में संक्षेप में प्रकाश डाला है जो उसे अन्य धर्मों से पृथक श्रेणी में रखती हैं। पुस्तिका जन साधारण में प्रचार करने योग्य है।

(vii) **जैन धर्म में वायु सम्बन्धी अवधारणा**—पृष्ठ २०, प्राप्ति स्थान वही

जैन धर्म में वायु की स्थिति जीव रूप में मानी गई है यद्यपि आधुनिक विज्ञान अभी तक इस तथ्य तक नहीं पहुंच पाया हैं। श्रावक एवं श्रमणाचार दोनों में संयमाचरण की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका वायु कायिक जीवों के प्रति संवेदनशीलता, सहृदयता एवं सावधानी में निहित है। श्वासोच्छवास के नियमन एवं प्राणायाम द्वारा साधक वायु पर नियन्त्रण प्राप्त कर उत्कृष्ट ध्यान की उपलब्धि कर सकता है। मुनि श्री ने ज्ञानार्णव, योग रत्नाकर, आदि ग्रन्थों के संदर्भ से जैन धर्म की वायु सम्बन्धी उपरोक्त अवधारणा को इस लघु पुस्तिका में सुस्पष्ट किया है।

उपरोक्त सभी कृतियां स्वाध्याय मनन चिन्तन के लिए निःशुल्क उपलब्ध हैं।

हिन्दी जैन कथा साहित्य (कथानक रूढ़ियां और कथाभिप्राय)—ले०–डा० सत्य प्रकाश जैन, प्रकाशक—शैली श्री दि० जैन मन्दिर, सब्जी मंडी, दिल्ली–६, प्रथम संस्करण १९९३; पृष्ठ ४१०; मूल्य–१५०/-

डा० सत्य प्रकाश जैन ने अपने इस शोध-प्रबन्ध में सन् १९१२ से १९५४ की अवधि में हिन्दी में प्रकाशित तथा विक्रम की १३वीं से १९वीं शती तक रची गई कुल २६७ कथाओं के लोक रूपों का अध्ययन किया है। विद्वान लेखक के अनुसार लोक तन्त्र के सभी उदाहरण कला साहित्य में उपलब्ध होते हैं। ग्रन्थ में २७ प्राकृत, १० अपभ्रंश तथा ११२ हिन्दी में सूचित कथाओं का संक्षिप्त कथा-सार भी दिया गया है। विषय वस्तु को चार अध्यायों में विभाजित किया गया है, यथा (१)–सामग्री तथा विषय प्रवेश, (२)–हिन्दी जैन कथाओं के लोक-कथा रूप, (३)–हिन्दी जैन कथा साहित्य में प्रयुक्त कथानक रूढ़ियां तथा कथाभिप्राय, तथा (४)–कथामानक रूप। परिशिष्ट में हिन्दी जैन कथाओं की अकारादि क्रम से सूची तथा सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत की गई है।

भारतीय साहित्य की समृद्धि में जैन कथाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। इनमें भारतीय सभ्यता का इतिहास निरूपित होता है। विद्वान लेखक ने जैन कथाओं का भारत तथा विदेशों के तथा अन्य धर्मों के कथा साहित्य से तुलनात्मक अध्ययन करके उन पर जैन कथाओं के प्रभाव की ओर ध्यान आकर्षित किया है। विद्वान लेखक का प्रयास श्लाघनीय है तथा श्रम सार्थक है। यह ग्रन्थ हर पुस्तकालय व शास्त्र भंडार में रखने योग्य है।

—अजित प्रसाद जैन

हित सम्पादक—रचयिता पं० भूरामल जैन शास्त्री (आचार्य श्री ज्ञान सागर जी महाराज); सम्पादक–डा० अरुण कुमार जैन; प्रकाशक–श्री दिगम्बर जैन समिति एवं सकल दिगम्बर जैन समाज, अजमेर; पृष्ठ संख्या ६० + प्रकाशकीय + आचार्य श्री की जीवन यात्रा एवं सांख्यिकी परिचय + प्रस्तावना; चित्र ५; द्वितीय संस्करण १९९४; मूल्य स्वाध्याय।

वस्तुत: ज्ञान के सागर रहे, जैन वाङ्मय और जैन सिद्धान्त के मनस्वी अध्येता, संस्कृत में **दयोदय, जयोदय** और **वीरोदय** महाकाव्य त्रयी तथा संस्कृत व हिन्दी में अन्य अनेक ग्रन्थों के प्रणेता, ५२ वर्ष की वय से दीक्षा मार्ग पर अग्रसर रहे पं० भूरालाल जी शास्त्री द्वारा १५९ अनुष्टुप छन्दों में प्राणिमात्र

के हित सम्पादन के सद्उद्देश्य से संस्कृत में निबद्ध **हित सम्पादक** रचना को हिन्दी अर्थ के साथ सम्पादित कर सर्वजनहिताय प्रकाश में लाने का प्रयास स्तुत्य है। वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट प्रकाशन के रूप में अत्यल्प समय में इसका द्वितीय संस्करण निकलना इसकी लोकप्रियता का द्योतक है। गृहस्थ के लिये पुरुषार्थ-त्रय धर्म, अर्थ और काम का विवेचन, वर्णव्यवस्था का विवेचन तथा आन्तरिक एवं बाह्य शुद्धि का आगमानुसार प्रतिपादन इस कृति का प्रतिपाद्य है। रचनाकर का मानना है कि 'मनुष्य जन्म से नहीं, कर्म है महान बनता है।' उसका उपदेश है—पापी से नहीं पाप से घृणा करो।

प्रस्तावना आदि इस विषय में मौन हैं कि प्रस्तुत कृति के श्लोकों का हिन्दी अर्थ किसके द्वारा किया गया है; अनुमान किया जाता है कि यह सम्पादक महोदय का स्वयं का कृतित्व है। यदि ऐसा है, तो हमें लगता है कि कहीं-कहीं भावातिरेक में विद्वान सम्पादक महोदय अनुवादक की सीमा का लंघन कर गये हैं और मूल कृतिकार के मन्तव्य से विचलन कर गये हैं। उदाहरण स्वरूप श्लोक संख्या ६ का अर्थ और व्याख्या दृष्टव्य है। यदि ऐसा नहीं है और यह हिन्दी अर्थ और व्याख्या भी महाराज श्री का ही कृतित्व है, तो उपर्युक्त टिप्पणी के लिये सम्पादक बन्धु से क्षमा चाहूंगा।

पुस्तक के मुख आवरण पृष्ठ पर दिये गये चित्र से पुस्तक की गरिमा में कोई वृद्धि हुई है, हमें नहीं लगता। यदि पुस्तक में और मुख आवरण पृष्ठ पर चित्र देना आवश्यक ही था तो भीतर दिया श्री ज्ञानसागर महाराज का चित्र और पृष्ठ आवरण पर श्री सोनी जी की नासियां के चित्र पर्याप्त रहते। पुस्तक का मुद्रण एवं साज-सज्जा उत्तम है और पुस्तक श्रावकों के लिये पठनीय है।

श्राविकारत्न श्रीमती लाडा देवी सेठी अभिनन्दन ग्रन्थ—प्रधान सम्पादक डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल; प्रकाशक उक्त ग्रन्थ समिति, १२ पार्क लेन, कलकत्ता-७०००१६; पृष्ठ ४०० (लगभग) + शताधिक चित्र; १९९३; मूल्य १०१.००

अब से लगभग ५० वर्ष पूर्व साहित्य सेवी पं० नाथू राम 'प्रेमी' के अभिनन्दन ग्रन्थ से समाज में प्रारम्भ हुई अभिनन्दन ग्रन्थों/स्मृति ग्रन्थों की परम्परा में यूं तो अब तक लगभग ४० ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु उनमें पांच ही महिला-रत्नों को समर्पित हैं। इनमें से एक ब्रह्मचारिणी पं० चन्दाबाई जी को

तथा तीन आर्यिका माताओं के सम्बन्ध में हैं। समाज की किसी गृहस्थ नारी की सामाजिक सेवाओं का मूल्यांकन करने वाला यह पहला अभिनन्दन ग्रन्थ है। सन् १९२२ में पलासवाड़ी (आसाम) में राजस्थानी जैन वैश्य परिवार में जन्मी और छापड़ा (राजस्थान) के आसाम प्रवासी सेठी परिवार में श्री फूलचन्द को विवाही, ११ सन्तानों की जननी श्रीमती लाडा देवी सेठी ७२ वर्ष तक सद्-गृहस्था के रूप में जीवन जीयीं तथा धार्मिक और समाजिक कार्यों में अपनी रुचि और सक्रिय योगदान द्वारा महिलारत्न कहलाई। ग्रन्थ ६ खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में सन्देश, मंगल कामना आदि, द्वितीय खण्ड में श्रीमती लाडा देवी सेठी का जीवन परिचय और कृतित्व तथा तृतीय खण्ड में उनके परिवार-जनों का परिचय और उनके संस्मरण हैं। शेष तीन खण्ड यद्यपि क्रमशः साहित्य दर्शन, समाज दर्शन तथा विभिन्न क्षेत्रों में नारी समाज का योगदान, शीर्षकों में वर्गीकृत हैं, इनमें संकलित ३२ लेखों में ३ लेखों को छोड़कर शेष सभी लेख जैन नारी समाज के विभिन्न क्षेत्रों में योगदान अथवा महिलाओं विषयक ही हैं। अतः एक प्रकार से सम्पूर्ण ग्रन्थ श्रीमती लाडा देवी के निमित्त से जैन नारी समाज को अर्पित है। सामग्री के उपयुक्त चयन और सुसम्पादन के लिये डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल साधुवाद के पात्र हैं। ग्रन्थ का मुद्रण-प्रकाशन स्तरीय है।

वीर—श्री अक्षय कुमार जैन स्मृति विशेषांक—वर्ष ७०, अंक ३६, २२ फरवरी १९९५, सम्पादक श्री पारस दास जैन; प्रकाशक—अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद, नई दिल्ली; पृष्ठ (आवरण सहित) ८०; मूल्य २ रु० ५० पै०

लेखक, पत्रकार, स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी, कुशल वक्ता और चिन्तक श्री अक्षय कुमार जी की द्वितीय पुण्यतिथि पर उन्हें इस विशेषांक में श्रद्धा-सुमन अर्पित किये गये हैं। विभिन्न संस्मरणों के माध्यम से अक्षय कुमार जी के जीवन, कृतित्व और व्यक्तित्व के विविध पक्षों को इसमें उजागर किया गया है। अंक पठनीय और संग्रहणीय है।

स्तोत्रनिकुञ्ज—संकलक एवं संस्कृत-हिन्दी टीकाकार—डॉ० पन्ना लाल जैन साहित्याचार्य; प्रकाशक—श्री आचार्य शिवसागर दि० जैन ग्रन्थमाला, शान्ति-वीर नगर, श्री महावीर जी (राज०); प्रथम संस्करण २५ मई, १९९४; पृष्ठ ८० + ११ + ३ + १ चित्र; मूल्य ११ रुपये

प्रस्तुत कृति **स्तोत्रनिकुञ्ज** अपर नाम **यमक का चमत्कार** में संस्कृत में रचित १० स्तोत्र संकलित हैं। इनमें ४ श्री पार्श्वनाथस्तोत्र, १ श्री महावीरस्तोत्र, १ नेमिस्तोत्र, १ चतुर्विंशतिजिनस्तोत्र, १ वीतरागस्तवन, १ सरस्वतीस्तुति और १ मरुदेवीस्वप्नावली है। इनमें ४ अज्ञातकर्तृक हैं और शेष ६ के रचयिता क्रमशः श्री पद्मप्रभ मलधारिदेव, श्री राजसेन भट्टारक, श्री अमरकीर्ति भट्टारक, श्री अमरेन्द्रयति, श्री ज्ञानभूषणयति और श्री देवनन्दी हैं। चयनित सभी स्तोत्र रचनाकारों की अद्भुत शब्द शक्ति और यमक अलंकार के प्रयोग में उनकी सिद्धहस्तता के परिचायक हैं। क्रमांक ६ पर अज्ञातकर्तृक 'नेमिस्तोत्र' की सम्पूर्ण रचना तो मात्र दो अक्षर 'न' और 'म' को लेकर की गई है। प्रत्यक्षतः दुरुह इन स्तोत्रों को समझना और उन पर भाष्य या टीका कर उन्हें सामान्य पाठकों के लिये सुबोध करना किसी चक्रव्यूह भेदन से कम नहीं है। यह कार्य उन्हीं रचनाकारों के समान वैदूष्य-सम्पन्न, व्युत्पन्न मति, शब्द-शरसंधान में निपुण महारथी के लिये ही संभव था जिसे संस्कृत और हिन्दी भाषाओं पर असाधारण अधिकार प्राप्त वयोवृद्ध विद्वान डा० पन्ना लाल जी ने बड़ी कुशलता से कर दिखाया है। अपनी टीका और हिन्दी अर्थ के द्वारा इन स्तोत्रों का रसास्वादन करने का अवसर सामान्य पाठकों को प्रदान करने हेतु हम डाक्टर साहब के आभारी हैं। संकलन पठनीय और संग्रहणीय है।

सर्वोदय सार—संकलनकर्ता श्री वेद चन्द्र जैन; प्रकाशक—श्री दिगम्बर जैन सर्वोदय तीर्थ कमेटी, अमरकंटक (म०प्र०); प्रथम संस्करण १९९४; पृष्ठ ५७+७+१ चित्र

१५ जनवरी, १९९४ से २९ मई, १९९४ के मध्य सर्वोदय तीर्थ, अमरकण्टक, में आचार्य श्री विद्यासागर महाराज द्वारा दी गई २४ देशनाओं को श्री वेद चन्द्र जैन ने शब्दों में ढाला है और मुनि श्री समतासागर जी ने व्यवस्थित सम्पादित कर पुस्तक आकृति प्रदान की है। आचार्य श्री के ये प्रवचन श्रावकों के लिए पठनीय और मननीय हैं।

स्तुति-सरोज—रचयिता—आचार्य श्री विद्यासागर महाराज; प्रकाशक—सिंघई ताराचन्द बाझल, राजेश दाल मिल, पथरिया (दमोह), म० प्र०; पृष्ठ ४८+५ चित्र; प्रथम आवृत्ति १९९४

वर्तमान शती में हुए चार आचार्य प्रवरों—श्री शान्तिसागर महाराज, श्री वीरसागर महाराज, श्री शिवसागर महाराज और श्री ज्ञानसागर महाराज के प्रति आचार्य श्री विद्यासागर महाराज द्वारा सरस सुबोध शैली में प्रस्तुत काव्याञ्जलियां प्रस्तुत पुस्तिका में संकलित हैं, जो पठनीय हैं। आचार्य श्री ज्ञानसागर तो विद्यासागर महाराज के दीक्षागुरु ही थे और शेष तीन भी उनके श्रद्धास्पद रहे। तदनुरूप ये विनयाञ्जलियां हैं और आचार्य श्री की काव्य प्रतिभा की परिचायक हैं।

अमूर्त-शिल्पी : आचार्य श्री विद्यासागर—रचयिता—मुनि क्षमासागर; प्रकाशक—गुना के युवामण—नई दुनिया प्रिन्टर्स, इन्दौर; पृष्ठ १६ + ३ चित्र; १९९४

आर्ट पेपर पर प्रस्तुत इस भव्य प्रस्तुति में आचार्य श्री विद्यासागर महाराज के व्यक्तित्व और विचारों को विज्ञापित किया गया है।

तरुण-शतक—रचयिता—प्रो० शील चन्द्र जैन; प्रकाशक—तरुण क्रांति जैन परिषद, सोनकच्छ, जिला देवास (म०प्र०); पृष्ठ १० + आवरण; १९९३

पुष्पदन्त सागर महाराज को नमन करके १०८ सुबोध दोहों में प्रोफेसर साहब ने युवा मुनि श्री तरुण सागर महाराज का स्तवन किया है। इसमें मुनि श्री के जीवन व गुणों का परिचय और जैन धर्म के सिद्धान्तों का परिचय तो है ही, यह मुनि श्री में रचनाकार की असीम श्रद्धा और काव्य प्रतिभा का भी परिचायक है।

आचार्य ज्ञानसागर की साहित्य साधना (समालोचनात्मक विशिष्ट लेख संग्रह) एवं सांगानेर जिन बिम्ब दर्शन—सम्पादक—डा० शीतल चन्द जैन, जयपुर एवं डा० रमेश चन्द जैन, बिजनौर; प्रकाशक—प्रबन्धकारिणी कमेटी दि० जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघी जी, सांगानेर, जयपुर; पृष्ठ १५० + ५०; सचित्र; प्रथम संस्करण १९९४; मूल्य ५० रुपये

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघी जी, सांगानेर (जयपुर) द्वारा ९ से ११ जून, १९९४, को आचार्य ज्ञानसागर महाराज के २१वें समाधि दिवस के उपलक्ष में उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर एक अखिल भारतीय विद्वद् संगोष्ठी और १२-१४ जून, १९९४, को वहाँ भूगर्भ स्थित जिन बिम्ब दर्शन समारोह का आयोजन किया गया था। उक्त विद्वद् संगोष्ठी में लगभग दो दर्जन लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान मनीषियों द्वारा आचार्य श्री के व्यक्तित्व और उनकी

कृतियों तथा उनमें अन्तर्निहित विविध पक्षों के अध्ययन सम्बन्धी जिन आलेखों का वाचन किया गया था उन्हें सम्पादित कर इस पुस्तक में १५० पृष्ठों में प्रकाशित किया गया है। सांगानेर के भूगर्भ स्थित जिन चैत्य और उसकी चमत्कारी प्रतिमाओं का परिचय देने वाले लेखों के साथ-साथ मुनि श्री सुधा सागर महाराज के प्रवचनों, विद्वत्संगोष्ठी की रिपोर्टों, प्रकाशकीय, सम्पादकीय आदि से युक्त यह प्रकाशन है। आचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज की कृतियों का अध्ययन करने वालों के लिये तो यह पुस्तक उपयोगी है ही, सामान्य पाठकों के लिये भी ज्ञानवर्द्धक और पठनीय है।

—रमा कान्त जैन

ऐसे थे चारित्र चक्रवर्ती—प्रस्तुति—आर्यिका विशुद्धमति माता जी; प्र० श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा, नन्दीश्वर फ्लोर मिल्स, ऐशबाग, लखनऊ-२२६००४; पृ० १४७ + ६; १९९४; मूल्य ५ रु०

इस पुस्तक में आचार्य शान्तिसागर जी के सम्बन्ध में १९३२ से १९९२ तक प्रकाशित ९ पुस्तकों/श्रद्धांजलि एवं अन्य विशेषांकों के आधार से सामग्री का संकलन किया गया है। प्रस्तुतकर्त्री ने अपनी स्वतन्त्र विचारणा इसमें नहीं दी है। पं० सुमेरुचन्द्र दिवाकर के **चारित्र चक्रवर्ती** के १९५३ व १९७२ के संस्करण इसके मूल स्रोत हैं। यह पुस्तिका हमें **धर्म मंगल** की विदुषी सम्पादिका प्रा० सौ० लीलावती जी के सौजन्य से प्राप्त हुई जिसके लिए हम उनके आभारी हैं।

Jaina Mahamantra and Psalms—English Translation : K. B. Jindal; Pub.—Shanti Saubhagya Prakashan, 376/40 Saadatganj, Lucknow-226003; pp. 8 & 10 respectively.

The compilation of the original **Suktas, Sutras and Stotras,** as well as their rendering into English, have been made by Mr. K. B. Jindal with discretion and care. To those who do not know Prakrit and Sanskrit, it makes easy to comprehend the intent and meaning through English rendering. The booklets were distributed free at the time of the Pancha-Kalyanaka at Sravasti. Our congratulations to Mr. Jindal for his contribution, and to the publisher for the fine get up!

विमर्श—अंक ३, प्र० संस्कृत प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ; १९९५; पृ० ६८ + ४

१९९४ में विभाग की मासिक गोष्ठियों में अनुसन्धाता/अनुसन्धात्रियों द्वारा पठित ६ निबन्धों का संकलन इस अंक में है। ३ लेख संस्कृत में हैं और शेष ६ हिन्दी में। विभागाध्यक्ष डा० उमेश प्रसाद रस्तोगी के निर्देशन में श्री प्रयाग नारायण मिश्र ने इस पत्रिका का परिश्रमपूर्वक सम्पादन किया है। श्री मिश्र का स्वयं का शोध पत्र 'आगमडम्बरे प्रतिबिम्बितमागमप्रामाण्यम्' भी इसमें है। उक्त ग्रन्थ में जैन धर्म के सम्बन्ध में कतिपय प्रवादों का उल्लेख है जिनके सम्बन्ध में जैन विद्वानों द्वारा गवेषणा अपेक्षित है।

नागसायर—(तीर्थंकर ऋषभ अंक); दिसम्बर १९९४; सं० सुश्री कुसुम जैन; प्र० श्री मेघराज जैन, अरिहन्त इन्टरनेशनल, २३९ गली कुंजस, दिल्ली-११०००६; पृ० ४०६; मूल्य ५० रु०

इसमें ऋषभदेव से सम्बन्धित विविध पक्षों पर ३८ लेख हिन्दी में और ३ लेख अंग्रेजी में संकलित हैं। साथ ही, 'श्री ऋषभ जिनस्तवनम्' और 'जिन सहस्रनाम भाषा' को भी सानुवाद एवं भाष्य सहित प्रस्तुत किया गया है। विगत प्रायः १० वर्षों में विभिन्न संगोष्ठियों में पठित शोध पत्रों के माध्यम से जो विविध सामग्री प्रकाश में आई है, उसको सम्पादिका महोदया ने बहुत प्रयत्न और निष्ठा के साथ संजोया है, जिसके लिए वह साधुवाद की पात्र हैं।

१९९२ में ऋषभदेव प्रतिष्ठान द्वारा आयोजित संगोष्ठी में पठित हमारे लेख 'मानव सभ्यता के आदि प्रस्तोता—ऋषभदेव' को भी सम्मिलित किया गया है, इसके लिए हम आभारी हैं। यह उपयोगी होता यदि संगोष्ठियों का भी टिप्पणी में निर्देश कर दिया जाता ताकि लेख का समय पता चल सकता जो शोधार्थी को यह संकेत दे देता कि उक्त समय तक ज्ञात सूचनाओं का उसमें प्रायः समावेश/आकलन संभावित है।

पञ्चाल—खण्ड ७, १९९४; सं० डा० ए० एल० श्रीवास्तव; प्र० पञ्चाल शोध संस्थान, ५२/१६ शकर पट्टी, कानपुर-२०८००१; पृ० १३८ + ४, चित्र फलक २४ + ४; मूल्य ५० रु०

इसमें २५ शोधपूर्ण लेखों का सुरुचिपूर्ण प्रकाशन है। १८ लेख हिन्दी में हैं और ७ अंग्रेजी में। १५ लेख पञ्चाल के इतिहास और पुरातत्त्व से सम्बन्धित

हैं। पञ्चाल की आंचलिक संस्कृति को प्रकाश में लाने का कार्य संस्थान द्वारा इस पत्रिका के माध्यम से श्रम और सुरुचिपूर्वक किया गया है जिसके लिए संस्थान के व्यवस्थापक श्री हजारी मल बांठिया तथा पत्रिका के सम्पादक डा० ए० एल० श्रीवास्तव साधुवाद के पात्र हैं। पत्रिका प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्त्व के अध्येताओं के लिए उपयोगी है।

इन्द्रधनुष—ले०—डा० टी० सी० गोयल; प्र० आरगो पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ; १९९३; पृ० ५६ + ४

यह एक टीचर-सर्जन के खाली क्षणों की छिटपुट काव्य रचनाओं का संकलन है। किंग जॉर्ज मेडिकल कालेज, लखनऊ, में डा० टी० सी० गोयल सर्जरी के प्रोफेसर हैं। पचपन वर्ष के जीवन में लेखक को जो विविध अनुभूति-प्रतीति हुई, उसके मन-मस्तिष्क पर जो संवेदन-संप्रेषण हुआ, वह ३४ कविताओं के रूप में मुखर हुआ है। १४ कवितायें जीवन के विविध रंगों पर हास्य-व्यंग्य अथवा गम्भीर चिन्तन का पुट लिये कवि के उद्‌गार हैं, १० रचनायें आयुर्विज्ञान संबंधी हैं, ९ अंग्रेजी में Vibgyor रूपी हैं और अन्त में 'चलते-चलते' कवि की वसीयत है—उसके सभी अंग शरीरान्त पर दूसरों के काम आ जायें और—

अब भी शायद कुछ अवशेष रहें
जूठन की तरह निशेष रहें
इन को करो समर्पित
अग्नि देव को
और भस्मावशेष को करो अर्पित
वायु देव को, धरती माता को
जिससे प्यार की खुशबू और रंगों से भरे
अनुराग के पराग से लदे
उगें जगह-जगह अनेकों पुष्प।
अगर मेरे अवशेषों को
तुम दफनाना चाहो,
मुझे कोई उज्र नहीं, मुझे कोई एतराज नहीं
एक इल्तिजा जरूर है
उनके साथ ही देना दफना
मेरी नफरत को, मेरी कमियों को
मेरे गुस्से को, मेरी खामियों को
मेरी शैतानी हो वापिस शैतान को
मेरी आत्मा को दो वापिस परमात्मा को।

एक चिकित्सक होने और साथ ही, चिकित्सक निर्माता होने के नाते, जो सलाह उन्होंने हम-पेशा डाक्टरों को दी है वह बहुत ही प्रासंगिक है—

Oh Doc !
Do you guarantee a care ?
Or relief, can you ensure ?
From death, disease and deformity
Suffering, pain and infirmity.....
No ..... No ..... No... .....
But Doc ! you can always
By Humane ways
Comfort the crying,
Console the dying
By skillful care
At home, hospital, everywhere.....
Oh Doctor
You look after
The infirm and sick
By drugs, knife and wick
Be it any pathy—
Allopathy, Homeopathy, Naturopathy.....
But Doc !
Forget not
The most important
Only 'pathy'
Campatible with any 'pathy'
The "Sympathy"
You may not relieve or cure
But 'care' you ensure.

यदि हमारे चिकित्सक के पेशे से जुड़े लोग इस सलाह से प्रभावित हो मानवीय सहृदयता को अंगीकार कर लें तो वास्तव में वह अपने व्यवसाय के प्रति निष्ठा का परिचय देंगे। हमारी साधु-संस्थायें भी इससे सीख ले सकती हैं।

डा० गोयल को मननीय एवं पठनीय काव्य सुमन प्रस्तुत करने के लिए हार्दिक साधुवाद !

—डा० शशि कान्त

समाचार–विमर्श

—श्री अजित प्रसाद जैन

सदाचार भारती का भ्रष्टाचार जांच प्रकोष्ठ

भू. पू. राष्ट्रपति श्री वी. आर. वेंकटरमन के नेतृत्व में गठित सदाचार भारती द्वारा भारतीय विद्या भवन बम्बई में सम्पन्न हुई प्रथम बैठक में उच्च पदाधिकारियों के विरुद्ध लगे भ्रष्टाचार के कड़े आरोपों की जांच के लिए एक जांच प्रकोष्ठ बनाने का निर्णय लिया गया। उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश श्री एच०आर० खन्ना की अध्यक्षता में गठित एक समिति द्वारा एक आचार संहिता भी तैयार की जायेगी।

हम सदाचार भारती के उपरोक्त निर्णय का स्वागत करते हैं किन्तु जिस देश में संयुक्त संसदीय उच्च स्तरीय जांच समिति की सर्व सम्मत संस्तुतियां मानने को सरकार को बाध्य न किया जा सकता हो, वहां सदाचार भारती का भ्रष्टाचार जांच प्रकोष्ठ तथा उसके द्वारा तैयार कराई गई आचार संहिता उच्च पदाधिकारियों में भ्रष्टाचार की रोकथाम में कोई सफलता प्राप्त कर सकेगी, इसमें हमें भारी संशय है। तथापि भ्रष्टाचार एवं भ्रष्ट पदाधिकारियों के विरुद्ध राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने में तो यह सहायक सिद्ध हो ही सकती है।

उपवास-तपस्या का कीर्तिमान स्थापित

श्वेताम्बर जैन स्थानकवासी संघ के आचार्य सम्राट श्री देवेन्द्र मुनि के आज्ञानुवर्ती श्री सहज मुनि ने बम्बई के धार उपनगर स्थित अहिंसा भवन में अपने २०८ दिन की उपवास-तपस्या का दि० ८ नवम्बर १९९५ को पारणे के साथ समापन कर विश्व में उपवास का एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। उपवास की इस दीर्घ अवधि में मुनि जी ने केवल उबाला हुआ पानी लिया। हम मुनि जी का इस दीर्घ तपस्या के लिए अभिनन्दन करते हैं।

अभी हाल ही में हमारे उत्तर प्रदेश के एक प्रमुख राजनेता ने प्रदेश सरकार की केन्द्र सरकार द्वारा बरखास्तगी की मांग को लेकर ४८ घन्टों का मौन सहित उपवास एक सार्वजनिक स्थल पर किया था। उपवास के दूसरे दिन उनका कुशल-क्षेम पूछने आए एक बड़े नेता को तथा प्रेस को स्लेट पर लिख कर बताया गया कि वैसे तो वे ठीक हैं पर उनका वजन तीन किलोग्राम कम हो गया है। दूसरे दिन

के उपवास के दौरान तो मूर्छा पर मूर्छा आती रही। जाहिर है कि वे अपने उपवास के दौरान पानी तो लेते ही रहे थे। हमारे इन नेता जी के उदाहरण से तो इतनी दीर्घ तपस्या के बाद श्री सहज मुनि जी का जीवित रहना ही उनके लिए अविश्वसनीय आश्चर्य की श्रेणी में आता। उनके हिसाब से तो सहज मुनि जी का वजन इतनी दीर्घ तपस्या से इतना कम हो जाना चाहिए था कि वे फूंक मारने से ही उड़ जाते।

एक और राष्ट्र संत हुए

शताधिक कृतियों के रचयिता प्रसिद्ध साहित्यकार स्थानकवासी संत श्री गणेश मुनि शास्त्री २२ दिसम्बर १९९४ को महामाहिम राष्ट्रपति जी श्री शंकर दयाल शर्मा के आमन्त्रण पर राष्ट्रपति भवन पधारे। राष्ट्रपति जी ने मुनि श्री की बहु चर्चित कृति 'अहिंसा की बोलती मीनारें' का लोकार्पण करते हुए उन्हें "राष्ट्रसंत" पद से उद्‌बोधन कर शाल भेंट की।

इस अवसर पर दिवाकर प्रकाशन के संस्थापक श्री श्रीचन्द सुराणा 'सरस' ने सचित्र भक्तामर एवं णमोकार महामन्त्र की कृतियां राष्ट्रपति जी को भेंट की। इस पर राष्ट्रपति जी ने कहा, "मेरे पिता जी स्वयं भक्तामर स्तोत्र पढ़ते ही नहीं पढ़ाते भी थे।"

साहित्य सम्राट बने

बम्बई के बालकेश्वर स्थित बाबू अमीचन्द पन्नालाल जैन देरासर में सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्वेताम्बर संत श्री यशदेव सूरि जी को ३ जनवरी को उनके जन्म दिवस के अवसर पर 'साहित्य सम्राट' की उपाधि से अलंकृत किया गया।

हमारे वीतरागी संतो को श्रद्धालु भक्तों के माध्यम से बड़ बोली उपाधियां बटोरने की कुछ अधिक ही चाहना है। स्पष्टत: जैन समाज के सभी साहित्यकार संतो की कृतियों का मूल्यांकन करके तो यह अलंकरण किया नहीं गया होगा। तथापि हम सूरि जी को इस उपाधि अलंकरण के लिए बधाई देते हैं। हमारे एक सद्य बने दिगम्बर आचार्य श्री ने तो अपने सब नवदीक्षित मुनि शिष्यों को सम्राट बना दिया—हर्ष सम्राट, वैराग्य सम्राट, निर्भय सम्राट आदि; और वैराग्य सम्राट, पुन: ग्रहस्थाश्रम में प्रवेश कर गए।

जैन एकता

अजमेर में श्वेताम्बर जैन आचार्य श्री नित्यानन्द सूरि ने लाखन कोठड़ी स्थित आत्म बल्लभ जैन तपागच्छ उपाश्रय में एक धर्म सभा को संबोधित करते हुए जैन एकता पर बल दिया। उन्होंने लोगों का आह्वान किया कि व्यक्तिगत स्वार्थ पूर्ति, संकुचित विचारों आदि के कारण जैन एकता का प्रयास सन्तोषजनक परिणाम नहीं दे सका। सम्प्रदाय से परे रहकर समाज हित में रचनात्मक कार्य जैन समाज को करना चाहिए।

हमारे पूज्य संत अपने प्रवचनों में अनेकान्त की दुहाई देकर सम्प्रदायवाद से ऊपर उठने का तथा जैन एकता के हित में कार्य करने का उपदेश देते हैं। किन्तु यदि वे सचमुच ही जैन एकता के लिए इच्छुक हैं तो वे क्यों अपना मार्म दर्शन देकर जैन एकता में सबसे बड़े बाधक तीर्थ क्षेत्रों के दिगम्बर-श्वेताम्बर विवाद, विशेषकर श्री सम्मेद शिखर जी के विवाद, को आपसी समझौते से नहीं सुलझवाते।

भगवान महावीर फाउन्डेशन

मद्रास में श्री एन० सुगालचन्द जैन ने 'भगवान महावीर फाउन्डेशन' नाम से एक ट्रस्ट की स्थापना की है जिसका उद्देश्य अहिंसा, शाकाहार, शैक्षणिक, सामाजिक आदि रचनात्मक कार्यों में जो व्यक्ति या संस्थायें संलग्न हैं, उन्हें हर वर्ष सम्मानित करना है। बिना जाति या भेदभाव के जो रचनात्मक कार्य करेंगे, उन्हें प्रतिवर्ष पांच लाख रुपये नगद, सम्मान चिन्ह, प्रशस्ति पत्र द्वारा सम्मानित किया जाएगा। फाउन्डेशन की चयन समिति के चेयरमैन डा० सी. सुब्रह्मण्यम (भूतपूर्व राज्यपाल, महाराष्ट्र) हैं। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक आपदाओं में भी यह फाउन्डेशन अनुदान प्रदान करेगा।

इस फाउन्डेशन द्वारा जैन धर्म को मानव धर्म के रूप में प्रतिष्ठापित करने का प्रयास करने के लिए हम श्री सुगालचन्द जैन का अभिनन्दन करते हैं।

आचार्य श्री का मोक्षगमन

"मधुबन ११ फरवरी— प्रशम-मूर्ति, सन्मार्ग-दिवाकर, वात्सल्य-रत्नाकर दिवंगत आचार्य श्री विमल सागर महाराज के प्रमुख शिष्य उपाध्याय श्री भरत सागर महाराज ने अपने गुरू वर्य के आचार्य पट्ट पर अभिषिक्त किए जाने के उपरान्त एक धर्म सभा को सम्बोधित करते हुए अपने प्रथम आशीर्वचन में

श्री पारसनाथ पर्वत पर पूर्ण अधिकार प्राप्त न होने तक सभी दिगम्बर जैन मतावलम्बियों को राष्ट्र स्तर पर पुरजोर ढंग से अहिंसक आन्दोलन चलाने का आह्वान करते हुए कहा कि सरकार को जैन शाश्वत तीर्थ क्षेत्र के समुचित विकास के लिए प्रस्तावित अध्यादेश को यथाशीघ्र लागू करना चाहिए। पारसनाथ पर्वत अनादि काल से दिगम्बर जैन सिद्ध क्षेत्र है—**हाल ही में यहाँ से मोक्ष गए आचार्य श्री १०८ विमल सागर जी महाराज** ने पारसनाथ पर्वत पर अपने अधिकारों की प्राप्ति हेतु जिस अहिंसामय आन्दोलन का आह्वान किया उसे मूर्त रूप देने के लिए समस्त दिगम्बरावलम्बियों द्वारा निर्णयात्मक आन्दोलन चलाया जा रहा है। आचार्य श्री ने विमल सागर महाराज के उक्त आह्वान को व्यवहारिक स्वरूप देने के लिए अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक आवाज उठाते रहने की घोषणा की।"

श्री सम्मेद शिखर आन्दोलन से अपने को सकारात्मक रूप से जोड़ने के लिए दिगम्बर जैन समाज आचार्य श्री की कृतज्ञ हैं। निश्चय ही उनकी इस उद्घोषणा से दिगम्बर जैन समाज में आन्दोलन के प्रति और चेतना जाग्रत होगी। हम आचार्य पदारोहण के शुभ अवसर पर पू० श्री भरत सागर म० का अभिनन्दन करते हैं।

उपरोक्त समाचार हमने रांची से प्रकाशित **अहिंसा सन्देश** (पाक्षिक) के फरवरी (प्रथम) १९९५ के अंक में प्रकाशित समाचार के आधार पर दिया है। हम अपनी निम्नांकित टिप्पणी यह मान कर दे रहे हैं कि उपरोक्त समाचार प्रसारित करने में **अहिंसा सन्देश** के संवाददाता ने या धर्मनिष्ठ सम्पादक जी ने पू० आचार्य भरत सागर म० के शब्दों में कोई फेर-बदल नहीं की है। किन्तु यदि ऐसा नहीं है तो यह समाचार **अहिंसा सन्देश** की विश्वसनीयता पर ही प्रश्न चिन्ह लगाता है तथा हम आचार्य श्री से अपनी टिप्पणी के लिए विनम्रतापूर्वक क्षमा याचना करते हैं।

पू० आचार्य श्री भरत सागर म० ज्ञान के सागर के रूप में विख्यात हैं, उनके अगाध ज्ञान की सराहना स्वयं उनके गुरुवर्य तक किया करते थे। वे सत्य महाव्रत के धारी हैं। वे जो कुछ भी कहेंगे, उसमें संशय करना भी पाप बन्ध का कारण होगा। उनके मुखारविन्द से पर्वतराज के पादमूल में ही यह उद्घोषणा होना कि अभी हाल में ही उनके गुरूवर्य आचार्य श्री विमल सागर महाराज यहां

से मोक्ष गए हैं, विस्मयजनक होते हुए भी अत्यन्त आह्लादकारी सुसमाचार है। आखिर जिस मोक्ष पद को पूर्ण श्रुत ज्ञान के धारी पंच श्रुत केवली भगवन्त, अंग पूर्वों के धारी घोर तपस्वी ज्योतिर्धर आचार्य गण, तीर्थंकर महाप्रभु के अध्यात्म दर्शन के अनन्य पुरस्कर्ता प्रातः वन्दनीय भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य, भावी तीर्थंकर का विरुद प्राप्त करने वाले आचार्य समन्तभद्र जैसे महामुनियों को भी प्राप्त करने के लिए अभी एकाधिक नर भव धारण करने पड़ेंगे, उसे हमारे आ० भरत सागर म० के गुरूवर्य आ० श्री विमल सागर महाराज ने इस पंचम काल में प्राप्त करके एक बेजोड़ कीर्तिमान स्थापित किया है।

दिगम्बर जैन मिथक साहित्य के अनुसार इन्द्रादिक देवगण अर्हन्त परमेष्ठि का मोक्ष कल्याणक मनाने के लिए आते हैं। आए इस बार भी होंगे पर कदाचित् आजकल के मानवों की कुत्सित प्रवृत्ति को देखकर अदृश्य रहे होंगे।

३० सितम्बर १९९२ को पू० आचार्य श्री विमल सागर म० को उनके ७५वें जन्म दिवस के सुअवसर पर श्री सोनागिर जी सिद्ध क्षेत्र पर आयोजित विनयांजलि धर्म सभा में सहस्रों की संख्या में उपस्थित होकर श्रद्धालु जनों ने **कलिकाल सर्वज्ञ** के विरुद से समलंकृत किया था। अलंकरण कार्यक्रम श्री भरत सागर म० सहित आचार्य श्री के संघ के सभी महाव्रती साधुओं की उपस्थिति में ही हुआ था। अतः इसके लिए श्री भरत सागर म० की सहमति, अनुमोदना एवं प्रेरणा निश्चय ही रही होगी, ऐसा हमारा अनुमान है। हमने अपने एक लेख में **कलिकाल सर्वज्ञ** की उपाधि का विश्लेषण करते हुए यह सिद्ध किया था कि जैन धर्म में सर्वज्ञ की अवधारणा में युग भेद से कोई अन्तर नहीं किया गया है, तथा त्रेता, द्वापर, कलियुग में हुए सभी सर्वज्ञ केवलज्ञानी थे तथा ज्ञान सम्पदा में समान थे। कलियुग का प्रारम्भ महाभारत युद्ध के कुछ ही वर्षों बाद महाराज परीक्षित के राज्यारोहण से माना गया है। इस प्रकार तीर्थंकर पार्श्वनाथ व महावीर प्रभु तथा उनके धर्म शासन में हुए जम्बू स्वामी पर्यन्त अनेक केवली भगवन्त **कलिकाल सर्वज्ञ** ही थे। (दृष्टव्य **शोधादर्श**-१५ के पृष्ठ १९-२३ पर सम्पादकीय लेख)।

सर्वज्ञता केवलज्ञान का ही पर्यायवाची शब्द है क्योंकि जैन धर्म की मान्यता के अनुसार केवलज्ञान के बिना कोई सर्वज्ञ हो ही नहीं सकता। सर्वज्ञ या केवलज्ञानी निश्चय से निर्वाण या मोक्ष पद प्राप्त कर सकता है, इसमें भी

संशय की कोई गुंजाइश नहीं है। अतएव सर्वज्ञ या केवलज्ञानी विभूतियों को ही 'अर्हन्त परमेष्ठि' की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। अत: यदि आचार्य श्री भरत सागर म० के कथनानुसार उनके गुरूवर्य **कलिकाल सर्वज्ञ** आचार्य श्री विमल सागर म० ने पर्वतराज से मोक्ष गमन किया तो इसमें आश्चर्य जैसी कोई बात नहीं। सर्वज्ञ हो जाने पर मोक्ष पद तो उन्हें प्राप्त करना ही था। हमें खुशी इस बात की है कि अब हम खम ठोक कर कह सकेंगे कि **सम्मेद शिखर** जी हमारा और केवल हमारा—हम दिगम्बर जैनों का ही तीर्थ क्षेत्र है और इस पर केवल दिगम्बर जैनों का ही अधिकार रहना चाहिए क्योंकि न केवल तीन हजार वर्ष पूर्व तक बल्कि आज भी हमारे दिगम्बर मुद्राधारी महामुनि यहां से मोक्ष गमन कर रहे हैं। सम्मेद शिखर आन्दोलन में सफलता मिलते ही इन पंचम काल के सिद्ध परमेष्ठि के चरण चिन्हों को पर्वतराज पर प्रतिष्ठापित कर दिया जाना चाहिए।

पंचमकालोत्पन्न आचार्य श्री विमल सागर महाराज का मोक्ष गमन करना वर्तमान अवसर्पिणी महाकाल खण्ड का एक अछनेरा (अपवाद) है जिसका उल्लेख करना कदाचित् गणधरादि पूर्व ज्योतिर्धर आचार्यगण भूल गए होंगे।

गिरनार जी में लाडू मेले

ब्र० रवीन्द्र जी द्वारा जारी की गई विज्ञप्ति के अनुसार श्री सिद्ध क्षेत्र गिरनार जी की तलहटी में स्थित विश्व शांति निर्मल ध्यान केन्द्र में विराजित पू० आचार्य श्री निर्मल सागर महाराज ने सभी दिगम्बर जैन श्रावकों को प्रेरणा दी है कि वे श्री गिरनार जी की यात्रा का कार्यक्रम इस प्रकार बनावें कि किसी न किसी तीर्थंकर प्रभु के निर्वाण दिवस पर **निर्वाण मेले** में शामिल होकर पांचवीं टोंक पर निर्वाण लाडू चढ़ाने का सौभाग्य प्राप्त कर सकें।

श्री गिरनार जी सिद्ध क्षेत्र वैसे तो केवल २२वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ की निर्वाण स्थली है, किन्तु विश्व शांति निर्मल ध्यान केन्द्र ने अब सभी चौबीसों तीर्थंकरों के निर्वाण दिवस पर निर्वाण मेले आयोजित करना प्रारम्भ किया है।

वर्ष के अन्तिम सात निर्वाण दिवसों के निर्वाण लाडू मेलों को "महामेला" विज्ञापित किया गया है। इन महामेलों में अन्य निर्वाण लाडू मेलों की अपेक्षा क्या अन्तर होगा या इनमें किन्हीं अन्य कार्यक्रमों के भी आकर्षण होंगे, यह स्पष्ट नहीं किया गया है। यदि केवल भगवान नेमिनाथ के निर्वाण दिवस पर

आयोजित होने वाले निर्वाण लाडू मेले को "महामेला" कहा जाता तो बात समझ में आती क्योंकि गिरनार पर्वत भगवान नेमिनाथ की निर्वाण स्थली है तथा उस दिन यहाँ यात्रियों का विशेष जमावड़ा होता है। किन्तु ६वें, १०वें, ११वें, १२वें, २३वें व २४वें तीर्थंकर के निर्वाण दिवस के लाडू मेलों को "महामेला" क्यों विज्ञापित किया गया है, यह समझ में नहीं आया।

इस समय महावीर प्रभु का धर्म शासन चल रहा है तथा उनका निर्वाण दिवस दीपावली पर्व के रूप में जैन समाज द्वारा सर्वत्र बड़ी श्रद्धा, भक्ति एवं उल्लास के साथ मनाया जाता है। भगवान महावीर स्वामी का मोक्ष कल्याणक मनाने के साथ-साथ ही निर्वाण पद प्राप्त सभी सिद्ध भगवानों एवं निर्वाण क्षेत्रों की पूजा-अर्चना एवं निर्वाण काण्ड का पाठ करके निर्वाण भक्ति की जाती है। वस्तुतः यह जैनियों का महाश्राद्ध पर्व है। अभी तक केवल कुछ ही अन्य तीर्थंकरों के मोक्ष कल्याणक पृथक रूप से मनाए जाने की प्रथा है, वह भी विशेष रूप से उनके जन्म या मोक्ष कल्याणक से जुड़े क्षेत्रों पर ही। तथापि भगवान ऋषभदेव व भगवान पार्श्वनाथ का मोक्ष कल्याणक अब कुछ व्यापक रूप से मनाया जाने लगा है, किन्तु जहाँ तक हमारी जानकारी है, अभी तक कहीं भी सभी तीर्थंकरों के मोक्ष कल्याणक व्यवस्थित रूप से नहीं मनाए जाते। चौबीस तीर्थंकर हमारी जैन संस्कृति व धर्म की युगों-युगों से अनवरत बहती आ रही धारा की प्राचीनता के प्रतीक हैं, हमारी आस्था के केन्द्र हैं। विश्व शांति निर्मल ध्यान केन्द्र ने पू० आचार्य श्री निर्मल सागर महाराज के मार्ग दर्शन में श्री गिरनार जी सिद्ध क्षेत्र पर सभी चौबीसों तीर्थंकरों के मोक्ष कल्याणक नियमित रूप से मनाए जाने की व्यवस्था करके इस दिशा में पहल की है, जिसके लिए हम आचार्य श्री का अभिनन्दन करते हैं।

हमें मालूम नहीं कि तीर्थंकर के मोक्ष कल्याणक मनाने में लाडू चढ़ाने की प्रथा कब प्रारम्भ हो गई। तीर्थंकर पूजा में मोक्ष कल्याणक का अर्घ पढ़ कर लाडू-नैवेद्य अर्पित करना कुछ विचित्र ही लगता है। प्राचीन उल्लेखों में तो भगवान महावीर प्रभु के मोक्ष कल्याणक को केवल दीप प्रज्वलित करके मनाए जाने के ही वर्णन मिलते हैं। कदाचित् मध्य कालीन भट्टारक युग में किसी मनीषी भट्टारक जी ने निर्वाण लाडू चढ़ाने की प्रथा को जन्म दे दिया होगा।

श्री गिरनार जी पर तीर्थंकरों के निर्वाण दिवस पर **निर्वाण लाडू मेले** आयोजित किये जाने का समाचार पढ़ने में बड़ा अटपटा लगता है। 'मेला'

शब्द हिन्दी भाषा में अंग्रेजी melee से आया है जिसके अर्थ होते हैं "दंगा, हंगामा करती भीड़"। हिन्दी में 'मेला' शब्द से अभिप्राय ऐसे स्थल से लिया जाता है जहाँ आमोद-प्रमोद व मनोरंजन के लिए जन समूह एकत्र हो। तीर्थंकर भगवन्तों का मोक्ष कल्याणक बड़ी श्रद्धा एवं भक्ति-पूजा के साथ प्रासुक द्रव्यों का अर्घ या नैवेद्य (लाडू) अर्पित करके मनाया जाता है। इस पूर्ण रूप से धार्मिक विधान में आमोद-प्रमोद या मनोरंजन के लिए कोई स्थान न तो होता ही है और न ही उसकी कल्पना की जा सकती है। तीर्थंकर भगवन्तों के निर्वाण दिवस मनाने के लिए पूजा-विधान के धार्मिक कार्यक्रम को 'निर्वाण-लाडू मेला' की संज्ञा देना, हमारी दृष्टि में दुर्भाग्यपूर्ण है। धार्मिक आयोजनों के लिए उपयुक्त शब्दों के चयन में हमें सावधानी बरतनी चाहिए।

कदाचित् मोक्ष कल्याणक के आयोजन को मेला ही समझ कर अब नई पीढ़ी के कुछ लोग, निर्वाण लाडू चढ़ने के बाद श्री मन्दिर जी के प्रांगण में ही घोर हिंसा जन्य बारूद के पटाखें छोड़ कर निर्वाण उत्सव का समापन करने लगे हैं, भले ही इससे श्री मन्दिर जी का शान्त वातावरण धमाकों की तीव्र ध्वनि तथा जलती बारूद की दुर्गन्ध से प्रदूषित हो जाए और कोई अप्रत्याशित दुर्घटना भी घट जाये।

अभिनव श्रमणाचार

हमें श्री राजेन्द्र कुमार जैन, मंत्री, श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन पंचायती बड़ा मन्दिर कमेटी, मुरैना, के हस्ताक्षरों से सकल दिगम्बर जैन समाज मुरैना की ओर से एक पत्रक प्राप्त हुआ है जिसमें लिखा है कि आचार्य कल्प सन्मति सागर महाराज (सिंह रथ प्रवर्तन कराने वाले) के संघ की दो आर्यिकाएं तथा एक ब्रह्मचारिणी बहन पधारीं। उन्होंने समाज के प्रमुखों तथा महासभा अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार सेठी व बाहर के कई अन्य विद्वानों को, जो गुरु गोपाल दास बरैया जयन्ती महोत्सव के निमित्त से आए हुए थे, रो-रो कर अपनी करुण गाथा सुनाई तथा उनके साथ व संघ की अन्य छुल्लिकाओं एवं ब्रह्मचारिणी बहनों के साथ वर्षों से किए जा रहे कुकृत्यों का ब्यौरा दिया। श्री सेठी जी उनकी ब्यौरेवार करुण कथा सुनकर बड़े दुखी हुए तथा अपना दिल्ली जाने का कार्यक्रम बदल कर दो विद्वानों के साथ सोनागिर रवाना हो गए।

इन तीनों बहनों ने रोते हुए भयभीत होकर मन्दिर कमेटी के मंत्री जी से आग्रह किया कि हम मुरैना समाज की शरण में आए हैं, समाज हमारा न्याय करे अन्यथा हम आत्मदाह कर लेंगे। मंत्री जी के माँगने पर उन्होंने अपनी करुण गाथा लिखकर भी मुरैना समाज के नाम दी, जिसकी फोटो प्रति पत्रक के साथ संलग्न है।

फलस्वरूप दिनांक ६-४-९५ को रात्रि ८ बजे श्री मन्दिर जी में आम पंचायत की बैठक हुई जिसमें बाहर से आए सज्जनों सहित ५०० महिलाओं एवं पुरुषों ने भाग लिया तथा प्रख्यात विद्वान पं० सुमतिचन्द्र शास्त्री ने बैठक का संचालन किया। बैठक अत्यन्त रोष एवं क्षोभ के वातावरण में हुई तथा रात्रि में १ बजे तक चली व सर्व सम्मति से निम्नलिखित निर्णय लेकर समाप्त हुई :

(१) सन्मति सागर (सिंह रथ वाले) का मुरैना की समस्त दिगम्बर जैन समाज सामाजिक एवं धार्मिक बहिष्कार करती है। उनके फोटो मन्दिरों एवं घरों से, जहाँ भी लगे हों, हटाये जावें।

(२) विश्वविद्यालय के नाम से जो लूट हो रही है उसको सबसे पहले मुरैना में रोका जावे। जो भी गोलकें विश्वविद्यालय की स्थानीय मन्दिरों में रखी हैं उन्हें खोल दिया जावे और उनकी राशि स्थानीय मन्दिरों में जमा की जावे तथा खाली गोलकों को भण्डार में जमा कर दिया जावे।

(३) समस्त शैलियों से सहयोग लेकर सन्मति सागर को वस्त्र पहना कर गृहस्थ जीवन में प्रवेश कराया जावे जिससे दिगम्बरत्व की रक्षा हो सके।

(४) मुरैना के जिन दानदाताओं ने विश्वविद्यालय के नाम पर जो दान स्वीकृति दी है, वह अब कोई भुगतान नहीं की जावे। उक्त दानदाताओं को दिगम्बर जैन समाज मुरैना उनके वचन भाव से मुक्त करती है।

(५) दिगम्बर जैन समाज मुरैना के उपरोक्त निर्णय से सभी आचार्यों, मुनि संघों, आर्यिका संघों, त्यागी व्रतियों, समस्त विद्वानों के साथ-साथ अखिल भारतीय दिगम्बर जैन संस्थाओं व जैन समाज को अवगत कराते हुए अपील है कि वह हमारे उक्त ठहराव का सर्व सम्मति से समर्थन करते हुए कार्यान्वित कराएं ताकि परम वीतरागी साधुओं पर आँच नहीं आये और दिगम्बर मार्ग की रक्षा हो सके।

मुरैना समाज के इस पत्रक को पढ़कर हमें बड़ी ग्लानि हुई। क्या आज कतिपय मुनि संघों में ब्रह्मचर्य महाव्रत इसी प्रकार परिभाषित किया जा रहा है? हमने **शोधादर्श**-२४ के अपने सम्पादकीय लेख "श्रमणाचार के नए आयाम" में दिल्ली से प्रकाशित **चौथी दुनिया** (साप्ताहिक) के दिनांक २७-११-८८ के अंक में प्रकाशित एक सचित्र लेख जो "क्या जैन साध्वियां देवदासियों में बदली जा रही हैं" के शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ था, का उल्लेख किया था। हमें लगा था कि वह लेख किसी जैन-धर्म विरोधी ने जैन मुनि संस्था का उपहास उड़ाने के लिए लिखा होगा। हमने अपने उक्त लेख में शिथिलाचार के कुछ अन्य प्रसंगों पर भी प्रकाश डाला था। फिर भी हमारा अनुमान था कि ऐसे मुनिवेशी दो चार ही होंगे तथा उनके चेहरे बड़ी जल्दी बेनक़ाब हो जाते हैं। किन्तु अब आचार्य कल्प सन्मति सागर की संघस्थ साध्वियों के दैहिक एवं मानसिक शोषण का हाल पढ़ कर तो सर चकराने लगता है। कदाचित् इस प्रकार का शोषण कुछ अन्य मुनि संघों में भी होता हो तो कोई आश्चर्य नहीं। ये आर्यिका व ब्रह्मचारिणी बहनें भी कई वर्षों तक दुराचार एवं कुकृत्यों का शिकार होने के बाद ही अब अपने आचार्य-कल्प गुरु की पोल खोलने का साहस जुटा पाईं।

महासभा अध्यक्ष श्री सेठी अपना पूर्व निर्धारित कार्यक्रम छोड़कर दो विद्वानों के साथ सोनागिर गए। कदाचित् कथा नायक आचार्य कल्प उस समय सोनागिर में ही अपने आश्रम में विराज रहे होंगे। अभी यह ज्ञात नहीं हुआ है कि श्री सेठी आचार्य कल्प श्री को मुनि दीक्षा छोड़कर गृहस्थ बन जाने के लिए तैयार कर पाए कि नहीं, पर हमें नहीं लगता कि उन्हें अपने प्रयास में कोई सफलता मिल पाई होगी। उलटे आचार्य कल्प श्री ने इन बहनों को ही दोषी ठहराया होगा। सिंह रथ नौटंकी का हाल पढ़ कर हम यह तो समझ गए थे कि ये मुनि श्री नौटंकी बाज एवं मायाचारी हैं पर यह अनुमान नहीं था कि उनका इतना चारित्रिक पतन हो गया है।

मुरैना की दिगम्बर जैन समाज ने इन मुनिवेशी सन्मति सागर के बहिष्कार आदि के विषय में अपना जो निर्णय घोषित किया है, वह सर्वथा उचित है किन्तु इस निर्णय की सफलता तभी है जबकि अन्य स्थानों की समाज भी इस निर्णय को अपनायें तथा जहां कहीं भी ये श्री विहार कर के पहुंचें इनका बहिष्कार किया जाये, इनके भोजन विश्राम की कोई व्यवस्था न की जाय तथा

इनके पीछी कमंडल छीन लिए जायें। वैसे हमारा अनुमान है कि समाज के आक्रोश से बचने के लिए ये श्री अभी काफी समय तक अपने सोनागिर स्थित आश्रम में स्थिरावास करते रहेंगे। भोजन आदि के लिए समाज की दया या भक्ति की उन्हें आवश्यकता है नहीं क्योंकि उनके स्वयं के वक्तव्य के अनुसार स्याद्वाद विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए एक करोड़ रुपये से अधिक राशि की प्राप्ति हो चुकी है, जिसके वे ही सर्वेसर्वा हैं।

हम धर्म संरक्षिणी महासभा से अपेक्षा करते हैं कि चूंकि उसके अध्यक्ष जी स्वयं इस प्रकरण के सब तथ्यों से पूर्ण अवगत हैं, इन आचार्य-कल्प के बहिष्कार के विषय में समाज को सार्वजनिक रूप से निर्देशित करें। हम स्याद्वाद शिक्षण परिषद से जुड़े विवेकशील विद्वानों एवं सुश्रावकों से भी आग्रह करते हैं कि वे इनसे परिषद का नाता तोड़ दें।

जिस प्रकार का शर्मनाक शोषण आचार्य कल्प सन्मति सागर द्वारा अपने संघ की साध्वियों एवं ब्रह्मचारिणी बहनों का किया जाता रहा है उसकी पुनरावृत्ति अन्य मुनि संघों में न हो इसके लिए यह आवश्यक है कि मुनि संघों में आर्यिका, छुल्लिका व ब्रह्मचारिणी बहनें व महिला संघ संचालिकाएं न हों तथा आर्यिका संघों में पुरुष छुल्लक, ब्रह्मचारी आदि न हो। यदि स्थानकवासी साधु समाज इस प्रकार की व्यवस्था कर सकता है तो दिगम्बर मुनि संघ क्यों नहीं इस प्रकार की व्यवस्था को अपना सकते। क्या हम अपनी अखिल भारतीय संस्थाओं (महासभा, महासमिति, परिषद, शास्त्री परिषद, विद्वत परिषद, संघ) के नेताओं तथा समाज प्रमुखों से अपेक्षा करें कि वे दिगम्बर जैन आचार्यों, मुनि संघों व आर्यिका संघों से साग्रह अनुरोध करेंगे कि शील व्रत के रक्षार्थ मुनि संघों में महिलाओं को तथा आर्यिका संघों में पुरुषों को किसी भी रूप में सम्बद्ध न रखा जाय।

——

बधाई

भारतीय रिजर्व बैंक के भूतपूर्व डिप्टी गवर्नर डा० डी० आर० मेहता को भारत सरकार ने सेबी (भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड) का अध्यक्ष नियुक्त किया है। पूंजी बाजार के इस नियामक संगठन के शीर्ष पर नियुक्त किये जाने वाले डा० मेहता जैन समाज के प्रथम व्यक्ति हैं।

८ जनवरी, १९९५ को नई दिल्ली में भारतीय विद्या के लब्ध प्रतिष्ठ जैन विद्वान डा० नथमल टाटिया को ५१ हजार रुपये का पी० एस० जैन पुरस्कार और सरस्वती की मूर्ति प्रदान कर सम्मानित किया गया।

१४ फरवरी को धर्मस्थल (कर्नाटक) में भगवान बाहुबलि महामस्तकाभिषेक के अवसर पर क्षेत्र के धर्माधिकारी डा० वीरेन्द्र हेगड़े को 'कर्मवीर भाउराव पाटिल समाज सेवा पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

साहित्य, संस्कृति, तत्त्वज्ञान एवं समाजसेवा के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिये २६ फरवरी को नई दिल्ली में पं० नाथूलाल जैन शास्त्री (इन्दौर) को 'श्रुतयोगी' की उपाधि से अलंकृत करते हुए ५१ हजार रुपये का आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार और प्रो० माधव रणदिवे (सतारा) को २५ हजार रुपये का आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार प्रदान किया गया। साथ ही, पं० मल्लिनाथ शास्त्री (मद्रास) को 'तमिलनाडु का जैन इतिहास' पुस्तक पर दस हजार रुपये का पुरस्कार अहिंसा प्रसारण ट्रस्ट की ओर से दिया गया।

सुश्री रूबी जैन को 'शुभचन्द्राचार्य कृत पाण्डव पुराण का समीक्षात्मक अध्ययन' पर मेरठ विश्वविद्यालय द्वारा और ब्र० अंजु जैन को जैन साहित्य के परिप्रेक्ष्य में "मंगलाचरण का समीक्षात्मक अध्ययन" पर आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच०डी० की उपाधि स्वीकृत की गई।

शोधादर्श परिवार उपर्युक्त महानुभावों को उनकी उपलब्धि पर बधाई देता है।

——

समाचार विविधा

पुण्य स्मरण—इतिहास-मनीषी विद्यावारिधि स्व० डा० ज्योति प्रसाद जैन की ८३वीं जन्म जयन्ती दिनांक ६-२-१९९५ को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में श्री अजित प्रसाद जैन की अध्यक्षता में श्रद्धापूर्वक मनाई गई। इस अवसर पर डाक्टर साहब के व्यक्तित्व और कृतित्व का पुण्य स्मरण किया गया। 'महावीराष्टक' के साथ-साथ डाक्टर साहब द्वारा रचित 'जय महावीर नमो' और 'वीतराग स्वरूपं' का सामूहिक पाठ हुआ और उनके कई लेखों के महत्वपूर्ण अंशों का वाचन किया गया।

आचार्य ज्ञानसागर संगोष्ठी, ब्यावर—२२ से २४ जनवरी, १९९५, को ब्यावर में मुनि श्री सुधासागर महाराज के सानिध्य में आचार्य श्री ज्ञानसागर द्वारा विरचित लघुत्रयी (सुदर्शनोदय, दयोदय चम्पू एवं समुद्रदत्त चरित्र) काव्यों पर काव्य समीक्षक विद्वानों की अखिल भारतीय संगोष्ठी सम्पन्न हुई जिसमें १८ आलेखों का वाचन हुआ। संगोष्ठी में भाग लेने वालों में उल्लेखनीय हैं—प्रो० रंजन सूरिदेव, डा० रुद्रदेव त्रिपाठी, डा० एस के० पाण्डेय (बड़ौत), पं० मूलचन्द्र लुहाडिया और डा० रमेश चन्द्र जैन (बिजनौर)। संगोष्ठी का संयोजन डा० जय कुमार जैन (मुजफ्फरनगर) एवं पं० अरुण कुमार शास्त्री ने किया।

पं० चैनसुखदास स्मृति व्याख्यानमाला—श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर, में फरवरी में अपभ्रंश साहित्य अकादमी के निदेशक डा० कमलचन्द सोगाणी की अध्यक्षता में उक्त व्याख्यानमाला सम्पन्न हुई। डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने पंडित जी के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला तथा मुख्य वक्ता डा० के० एल० शर्मा, एसोसियेट प्रोफेसर, दर्शन विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, ने 'जैन दर्शन समीक्षा' पर व्याख्यान दिया। उक्त महाविद्यालय की शोध पत्रिका "दर्शन भारती" का विमोचन मुख्य अतिथि श्री कपूरचन्द कुलिश द्वारा किया गया। कार्यक्रम के संयोजक डा० सनत कुमार जैन थे।

जैन विद्या संगोष्ठी, इन्दौर—कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर एवं देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर के संयुक्त तत्वावधान में २१-२२ फरवरी को जैन विद्या संगोष्ठी, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, एवं अर्हत् वचन पुरस्कार समर्पण समारोह आयोजित किया गया।

संगोष्ठी की विशिष्ट उपलब्धि के रूप में देवी अहिल्या विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० ए० ए० अब्बासी ने ज्ञानपीठ की उपलब्धियों, कार्य पद्धति तथा योजनाओं को दृष्टिगत कर उसे शोध संस्थान की मान्यता प्रदान की।

संगोष्ठी का प्रथम सत्र (उद्घाटन सत्र) २१ फरवरी को कुलपति प्रो० अब्बासी की अध्यक्षता में संहिता सूरि पं० नाथूलाल शास्त्री द्वारा आचार्य कुन्दकुन्द के चित्र के सम्मुख दीप प्रज्वलित कर सम्पन्न हुआ। विशिष्ट अतिथि प्रो० नवीन सी० जैन, पूर्व निदेशक, एकेडेमिक स्टाफ कालेज, तथा प्रो० एम० एल० कोठारी, डाइरेक्टर, प्रेस्टीज इंस्टीट्यूट आफ मैनेजमेंट, इन्दौर, थे। श्रीमती सुलोचना बडजात्या, प्रो० उदय जैन, तथा श्री देवकुमार सिंह कासलीवाल और डा० नीलम जैन ने कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा सम्पादित क्रियाकलापों का परिचय दिया। कार्यक्रम का संयोजन/संचालन डा० अनुपम जैन ने किया।

संगोष्ठी का द्वितीय सत्र डा० टी० व्ही० जी० शास्त्री, सिकन्दराबाद की अध्यक्षता एवं प्रो० एल० सी० जैन, जबलपुर के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुआ। मध्य प्रदेश के जैन पुरातत्त्व को समर्पित इस सत्र का संचालन डा० नीलम जैन, सहारनपुर, ने किया। डा० अभय प्रकाश जैन (ग्वालियर) ने बरई की रंगशाला तथा गोपाचल दुर्ग पर सद्य: अन्वेषित जिन मन्दिर के भग्नावशेषों, डा० सुरेन्द्र आर्य (उज्जैन) ने मालवांचल में पायी जाने वाली जिन चतुर्मुखी प्रतिमाओं का इतिहास एवं वैशिष्ट्य, तथा डा० राममोहन शुक्ल, सारंगपुर, ने सारंगपुर संग्रहालय की जैन मूर्तियों, का परिचय दिया।

संगोष्ठी का तृतीय सत्र प्रो० नलिन के० शास्त्री, प्राचार्य, वैश्य कालेज, रोहतक, की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। 'जैनाचार्यों का आर्थिक चिंतन' केन्द्रीय विषय को समर्पित इस सत्र के मुख्य अतिथि प्रो० जे०एन० कपूर, नई दिल्ली, थे, संचालन प्रो० उदय जैन ने किया। विख्यात अर्थशास्त्री प्रो० गणेश कावड़िया, संहिता सूरी पं. नाथूलाल जैन शास्त्री, डा. अनुपम जैन, डा. आर. सी. नागर, उज्जैन, तथा डा. आर. एम. शुक्ल, सारंगपुर, ने अपने विचार व्यक्त किये।

संगोष्ठी का चतुर्थ सत्र "जैन धर्म एवं विज्ञान" को समर्पित था। इस सत्र की अध्यक्षता डा० नेमीचन्द्र जैन ने की, मुख्य अतिथि होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय इन्दौर में गणित के प्राध्यापक प्रो० महेश दुबे थे। प्रो० एम० एल० जैन, माधव इंजीनियरिंग कालेज, उज्जैन, ने "पिरामिडीय संरचनाओं की वैज्ञानिकता एवं मानव जीवन पर उनके सकारात्मक प्रभाव",

प्रो० पारसमल अग्रवाल, रीडर, भौतिकी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन, ने "श्रावकाचारों का महत्व", डा० आर० सी० जैन, प्रभारी संगणन केन्द्र (कम्प्यूटर विभाग) ने "मानव आत्मा की संगणक से तुलना" तथा ब्र० निरंजन जी ने "वीतराग विज्ञान" पर अपने व्याख्यान दिये।

संगोष्ठी का समापन सत्र २२ फरवरी को पुरस्कार समर्पण एवं सम्मान समारोह के रूप में सम्पन्न हुआ। सत्र की अध्यक्षता प्रो० ए० ए० अब्बासी ने की तथा मुख्य अतिथि पद्मश्री बाबू लाल पटोदी थे। पूज्य मुनि श्री निजानंद सागर जी ने अपना मंगल आशीर्वचन प्रदान किया। कार्यक्रम का शुभारम्भ श्री रमेश कासलीवाल द्वारा रचित गीत "आओ कुन्दकुन्द सिर नाये"से हुआ।

भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, नई दिल्ली के रिसर्च एशोसिएट प्रो० लक्ष्मीचन्द्र जैन की कृति **The Tao of Jaina Sciences** को वर्ष १९९४ के कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। पुरस्कार निर्णायक मण्डल के अध्यक्ष प्रो० जे० एन० कपूर, नई दिल्ली एवं निर्णायक प्रो. नलिन के. शास्त्री को भी सम्मानित किया गया। अर्हत् वचन वर्ष ५ (१९९३) में प्रकाशित तीन श्रेष्ठ आलेखों के लेखकों डा. राजाराम जैन, निदेशक, कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली, प्रो. पी. राजागोपाल, कनाडा के प्रतिनिधि, एवं प्रो. जे. एन. कपूर, नई दिल्ली को, तथा निर्णायक मण्डल के सदस्य प्रो. के. सी. जैन (उज्जैन) एवं डा. आर. सी. नागर (उज्जैन) को भी, सम्मानित किया गया। संगोष्ठी के सचिव, अर्हत् वचन के सम्पादक तथा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की विभिन्न गतिविधियों के सूत्रधार डा० अनुपम जैन का भी शाल व श्रीफल द्वारा आत्मीय स्वागत किया गया।

नेत्र शिविर—स्व० श्री पाँचू लाल और उनकी धर्म पत्नी स्व० कपूरी देवी जैन की पुण्य स्मृति में पचेवर (टोंक) में २८ फरवरी से ५ मार्च की अवधि में ग्यारहवां नेत्र चिकित्सा शिविर लगाया गया। शिविर में २८१ मरीजों को निःशुल्क दवा दी गई और ४३ आपरेशन किये गये। साथ ही, दान स्वरूप निकाली गई राशि में से ११ रु० **शोधादर्श** को भी भेंट स्वरूप प्रदान किये गये, जिसके लिए **शोधादर्श** आभारी है।

आकाशवाणी और दूरदर्शन लखनऊ—१३ अप्रैल को सायं ८ से ८.१० पर 'भगवान महावीर : तपस्या और त्याग के प्रतीक' पर श्री ज्ञान चन्द जैन की डा० शशि कान्त से बातचीत आकाशवाणी लखनऊ से प्रसारित की गई।

१८ अप्रैल को साय ७.४५ से ८ पर 'क्रान्तदर्शी महावीर स्वामी' पर एक परिचर्चा दूरदर्शन लखनऊ से प्रसारित की गई जिसमें लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० सूर्य प्रसाद दीक्षित, वरिष्ठ पत्रकार एवं सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री ज्ञान चन्द जैन और डा० शशि कान्त ने भाग लिया। डा० शशि कान्त ने महावीर के दर्शन के वैचारिक धरातल पर क्रान्तिकारी पक्ष को स्पष्ट किया और वर्तमान परिस्थितियों में उसकी प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला।

शोक संवेदन

६ दिसम्बर, १९९४ को कोल्हापुर (महाराष्ट्र) में आचार्य श्री विद्यासागर के गृहस्थ जीवन में पिता ७८ वर्षीय मुनि श्री मल्लिसागर का समाधिमरण हो गया।

२६ दिसम्बर को श्री सम्मेदशिखर जी क्षेत्र मधुवन (बिहार) में सन्मार्ग दिवाकर, वात्सल्य रत्नाकर ७६ वर्षीय आचार्य श्री विमल सागर का समाधिमरण हो गया। आचार्य श्री सरल परिणामी और विवेकशील थे। **शोधादर्श-१५** में प्रकाशित हमारे सम्पादकीय 'कलिकाल सर्वज्ञ' के माध्यम से वस्तु स्थिति की जानकारी हो जाने पर उन्होंने उक्त उपाधि का प्रयोग अपने लिये निषिद्ध कर दिया था, यह उनकी विवेकशीलता एवं गुणग्राहकता का एक सटीक उदाहरण है।

३० जनवरी, १९९५ को अतिशय क्षेत्र बोरीवली (बम्बई) की तपोभूमि पर ८३ वर्षीय मुनि श्री सुपार्श्व सागर का समाधिमरण हो गया।

८ फरवरी को रतनलाल नगर, कानपुर, में मुनि श्री प्रबुद्ध सागर का समाधिमरण हो गया।

२७ फरवरी को लखनऊ में हमारी तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के सम्माननीय सदस्य और लखनऊ जैन समाज के लोकप्रिय नेता ७२ वर्षीय श्री इन्दर चन्द जैन (सुपुत्र स्व० श्री बराती लाल जैन) का हृदयगति रुक जाने से स्वर्गवास हो गया।

उपर्युक्त सभी दिवंगत के प्रति **शोधादर्श** परिवार अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है, दिवंगत आत्माओं की सद्गति और शान्ति के लिये प्रार्थना करता है तथा शोक संतप्त परिजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०

प्रगति प्रतिवेदन—1992-95

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०, की स्थापना सन् 1976 में उत्तर प्रदेश शासन की श्री महावीर निर्वाण समिति के उत्तराधिकारी स्वरुप एक रजिस्टर्ड सोसायटी के रूप में की गई थी। समिति का 1987-1991 का प्रगति प्रतिवेदन **शोधादर्श**–15 (नवम्बर 1991) के पृष्ठ 81-86 पर प्रकाशित है तथा 1991-92 का प्रगति प्रतिवेदन **शोधादर्श**–18 (नवम्बर 1992) के पृष्ठ 83-84 पर प्रकाशित है। प्रस्तुत प्रगति प्रतिवेदन अप्रैल 1992 से मार्च 1995 की अवधि के सम्बन्ध में है।

सदस्यों का वियोग :

इस अवधि में हमारी समिति के सम्माननीय सदस्य श्री जिनेन्द्र चन्द्र कागजी, श्री गुलशन राय जैन, श्री मोहन लाल सेठ, श्री कैलाश चन्द्र जैन (सलावा), श्री बृजेन्द्र कुमार जैन और श्री इन्दर चन्द जैन का निधन हो गया। इनके मार्गदर्शन से वंचित होने का हमें दुःख है। इन सभी का उन्मुक्त सहयोग हमें निरन्तर प्राप्त होता रहा था। हम इन दिवंगत आत्माओं की सद्गति और चिरशान्ति की कामना करते हैं।

नये सदस्य :

इस अवधि में सर्वश्री विजय लाल जैन, रूपचन्द गंगवाल, नलिन कान्त जैन, संदीप कान्त जैन, रोशन लाल नाहर और सरदार मल नाहर को समिति की आजीवन सदस्यता प्रदान की गई; सर्वश्री कैलाश भूषण जिन्दल, आदित्य जैन और सुभाष जैन को त्रैवार्षिक साधारण सदस्यता प्रदान की गई; तथा श्री अजय कुमार जैन कागजी को मानद साधारण सदस्यता प्रदान की गई।

सदस्यता :

सदस्यता के सम्बन्ध में दिनांक 12-12-1993 को प्रबन्धकारिणी समिति द्वारा यह निश्चय किया गया था कि साधारण सदस्यों के लिये त्रैवार्षिक सदस्यता शुल्क रुपये 101-00 कर दिया जाय जो दिनांक 1-4-1994 से तत्समय विद्यमान साधारण सदस्यों पर भी लागू होगा। इसकी लिखित सूचना दिनांक 9-9-1994 को सभी सदस्यों को इस अनुरोध के साथ भेज दी गई थी

कि वे तद्नुसार अपना सदस्यता शुल्क भेजने का कष्ट करें। दिनांक 31-12-1994 तक जिन साधारण सदस्यों का तद्नुसार सदस्यता शुल्क प्राप्त नहीं हुआ उनकी सदस्यता स्वत: समाप्त हो गई है।

विशेष आयोजन :

(1) **वीर शासन जयन्ती** : दिनांक 5 जुलाई, 1993, को बाल रवीन्द्रालय, चारबाग, लखनऊ में एक सार्वजनिक सांस्कृतिक संध्या एवं धार्मिक गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें मुख्य अतिथि श्री निर्मल कुमार जैन आई.ए.एस., विशेष सचिव, उ०प्र० शासन, थे तथा मुख्य वक्ता डा० (श्रीमती) प्रेम कुमारी जोशी, शिक्षा विभागाध्यक्ष, लखनऊ क्रिश्चियन कालेज, थीं। कार्यक्रम की विस्तृत रिपोर्ट **शोधादर्श**-20 (जुलाई 1993) में पृष्ठ 82-84 पर दृष्टव्य है।

(2) **स्व० पं० अजित प्रसाद के चित्र का अनावरण** : दिनांक 22 सितम्बर, 1994, को पं० अजित प्रसाद जी जो न केवल लखनऊ समाज के वरन् पूर्ण दिगम्बर जैन समाज के प्रख्यात नेता, साहित्यकार एवं पत्रकार थे, की 44वीं पुण्य तिथि के उपलक्ष में यह कार्यक्रम अजिताश्रम, गणेशगंज, लखनऊ, में सम्पन्न हुआ। पं० अजित प्रसाद जी का जीवन परिचय तथा इस कार्यक्रम की रिपोर्ट **शोधादर्श**-24 (नवम्बर 1994) के पृष्ठ 44-52 पर दृष्टव्य है।

आर्थिक प्रगति :

समिति का नियत जमा राशि के रूप में ध्रौव्य फण्ड दिनांक 1-4-1992 को रु० 6,58,406.96 पै० था जो अब दिनांक 31-3-1995 को बढ़कर रु० 7,96,916.30 पै० हो गया है। वर्ष 1991-92 का आय-व्यय विवरण **शोधादर्श**-18 के पृष्ठ 85 पर प्रकाशित किया जा चुका है। वर्ष 1992 से 1995 तक का आय-व्यय विवरण इस प्रतिवेदन के अन्त में पृष्ठ 86-87 पर दिया हुआ है। आय-व्यय लेखे का आडिट मेसर्स ए. जिन्दल एण्ड को., चार्टर्ड अकाउन्टेंट्स, द्वारा किया जा रहा है।

शोध पुस्तकालय :

मार्च 1992 तक पुस्तकों की संख्या 3,191 थी जिनका मूल्य रु० 52,606/- था। इस समय पुस्तकों की संख्या बढ़कर 3,640 हो गई है और इनका कुल मूल्य रु० 78,000/- से भी अधिक है। पुस्तकालय में सभी भारतीय धर्मों, दर्शन एवं संस्कृति के महत्वपूर्ण ग्रन्थों का संग्रह करने का प्रयास

किया गया है। जैन धर्म के सभी सम्प्रदायों के मूल ग्रन्थों, शोध-प्रबन्धों तथा शोधपरक एवं सामान्य साहित्य का संग्रह करने का प्रयास किया जाता है। लखनऊ विश्वविद्यालय के जैन विद्या पर काम कर रहे शोध अनुसंधानकर्ताओं द्वारा तथा अन्य जिज्ञासु विद्वानों द्वारा पुस्तकालय का उपयोग किया जाता है। शोध प्रवृत्तियों का निर्देशन डा० शशि कान्त करते हैं। पुस्तकालय, दिगम्बर जैन मन्दिर (श्री मुन्ने लाल कामजी धर्मशाला), चारबाग, लखनऊ के एक कक्ष में है और सोमवार को छोड़कर प्रतिदिन प्रातः 8.00 से 10.00 तक इसके खुलने की व्यवस्था की गई है।

शोधादर्श :

जैन विद्या की विभिन्न विधाओं के विद्वानों एवं चिन्तकों की छुटपुट शोध प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से स्व० डा० ज्योति प्रसाद जी जैन के मार्ग-दर्शन एवं प्रधान सम्पादकत्व में समिति द्वारा इस चातुर्मासिक शोध पत्रिका का शुभारम्भ फरवरी 1986 में किया गया था। जून 1988 में उनके निधन के उपरान्त उनके योग्य सुपुत्र डा० शशि कान्त इस शोध पत्रिका के प्रधान सम्पादन का भार उठाये हुए हैं। पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशित की जाती है और अब तक हम 25 अंक प्रकाशित कर चुके हैं। इन अंकों में प्रकाशित विविध सामग्री का दिग्दर्शन **शोधादर्श**-25 में 'पुनरावलोकन' के अन्तर्गत दृष्टव्य हैं। उसमें प्रकाशित विचार-प्रेरक लेखों एवं शोध सामग्री आदि की व्यापक सराहना हुई है।

तीर्थंकर छात्र सहायता कोष :

वर्ष 1992-93 में 30 छात्र-छात्राओं को रु० 7,772/- की, वर्ष 1993-94 में 65 छात्र/छात्राओं को रु० 15,337/- की, और वर्ष 1994-95 में 43 छात्र/छात्राओं को रु० 10,845/- की, अध्यापन सहायता प्रदान की गई। छात्र-छात्रायें कक्षा सप्तम् से स्नातक स्तर तक के थे।

महावीर जन कल्याण निधि :

वर्ष 1992-93 में एक कन्या के विवाह में, एक वृद्ध पुरुष को और एक वृद्ध महिला को रु० 2,945/- की, वर्ष 1993-94 में 12 असहाय वृद्ध/विधवा महिलाओं और एक वृद्ध पुरुष को रु० 6,370.30 पैसे की, और वर्ष 1994-95

में 7 असहाय महिलाओं तथा एक असहाय वृद्ध पुरुष को रु० 2,938/- की सहायता प्रदान की गई।

विगत 3 वर्षों में समिति की विभिन्न प्रवृत्तियां अग्रसर रही हैं। सोसायटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट के अन्तर्गत समिति के रजिस्ट्रीकरण का नवीकरण 29-3-1996 तक की अवधि के लिए करा लिया गया है। हमारा प्रयास है कि समिति का एक स्थायी भवन हो जहाँ पुस्तकालय, सभागार और विद्वानों/शोधार्थियों के अल्पकालिक निवास के लिए दो कक्ष हों। समिति के अध्यक्ष श्री सुमेर चन्द्र जी पाटनी, तथा अन्य सहयोगीगण—श्री लूनकरण नाहर, श्री कैलाश भूषण जिन्दल, श्री विजय लाल जैन, डा० शशि कान्त, श्री नरेश चन्द्र जैन और श्री रमा कान्त जैन, के प्रति मैं विशेष रूप से आभारी हूं कि उन्होंने समिति की विभिन्न प्रवृत्तियों को सुचारु रूप से संचालित करने में मुझे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

— **अजित प्रसाद जैन**
मंत्री
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.

पाठकों की दृष्टि में

शोधादर्श का २४वाँ अङ्क मिला। तदर्थ आभारी हुआ। इस अङ्क की अथ से इति तक पूरी की पूरी सामग्री अक्षरशः ध्यान से पढ़ने योग्य है। श्रीमान् पं० अजित प्रसाद जी का सम्पादकीय 'श्रमणाचार के नए आयाम' कतिपय आधुनिक भवाभिनन्दी श्रमणों एवं उन्हीं सरीखे कुछ आचार्यों की लीलाओं पर विशद प्रकाश डालता है। इसे पढ़कर दि० जैन समाज के वरिष्ठ नेताओं को तुरन्त ही कुछ उपाय करना चाहिए जिस से जैन धर्म कलङ्कित होने से बच जाये।

यदि श्रावक अन्ध श्रद्धा छोड़ दें और परीक्षा प्रधानी बन जायें तो स्वैराचारी श्रमणों को स्वयं ही सावधान होना पड़ेगा। प्रस्तुत सम्पादकीय लेख को अन्य दि० जैन पत्र-पत्रिकाएं भी प्रकाशित कर दें तो अधिकांश श्रावकों को इस विषय की जानकारी हो जायगी।

— **पं० अमृत लाल जैन शास्त्री**
लाडनूं (राजस्थान)

शोधादर्श-२३ में "यह कैसी पत्रकारिता" और 'समाचार-विमर्श' के अन्तर्गत 'सिहरथ प्रवर्तन-एक नाटक', 'भगवान महावीर का जीवंत अभिनय' 'आचार्य शान्तिसागर की स्वर्णपादुका' आदि के सटीक चित्र खींचने में आपने कुछ छोड़ा नहीं। पर कान पर किसके जूं रेंगेगी ? जबकि धर्म अर्थ कमाने की मशीन बन गया हो ! आपका कर्त्तव्य जागरण है सो किये जाइये।

शोधादर्श-२४ की सामग्री सुनयोजित व मननीय है। सम्पादकीय- **'श्रमणाचार के नये आयाम'** लेख सच्चाई और निर्भीकता से लिखा गया है। 'पं० अजित प्रसाद' लेख एक स्व० कर्मठ धर्मात्मा की हृदयछूती करनी है। अब कहां हैं वैसे श्रावक ? मुनियों के विषय में तो आप उनका नक्शा **शोधादर्श** में खींच ही चुके हैं।

— पं० पद्मचन्द्र शास्त्री
नई दिल्ली

अंक की सामग्री सारगर्भित एवं ज्ञानवर्द्धक है। सभी लेख सराहनीय तथा पठनीय हैं।

— श्री वेद प्रकाश गर्ग
मुजफ्फर नगर

आपका श्री सम्मेद शिखर जी वाला, पं० अजित प्रसाद जी वाला और रमा कान्त जी का 'अनेकान्तवाद-व्यवहारिक जीवन में' लेख पढ़े। बहुत ही सरल भाषा में सुरुचिपूर्ण लेख हैं। आपने लेख 'श्रमणाचार के नये आयाम' तो खूब लिखा है। किसी का नाम भी नहीं दिया और लिख सब कुछ दिया है। अगर कुछ भी समझ हो तो अवश्य प्रभाव पड़ना चाहिये, परन्तु सब चिकने घड़े हो चुके हैं। दोष तो श्रावकों का है जो धन इत्यादि देकर इनको भ्रष्ट करने में सहयोगी हैं। संसारी तो सब दुखी हैं। अतः मंत्र-तन्त्रादि के प्रभाव से ये महात्मा लोग सब जगह कुछ न कुछ लोगों को अपनी ओर आकर्षित करके अपना उल्लू सीधा कर ही लेते हैं।

हम जब गर्मियों में राजस्थान यात्रा पर गये थे तब जयपुर में चूलगिरि पर आचार्य श्री.....विराजमान थे। एक नई कार पर उनका नाम आदि लिखा था। फोन लगे थे। उनके साथ एक जवान खूबसूरत आर्यिका भी थी जिनको वे स्वयं आहार दे रहे थे श्रावकों के साथ चौके में बैठकर तथा आहार के

(शेष पृष्ठ ८८ पर)

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ०प्र० —

आय

	1992-93	1993-94	1994-95
प्रारम्भिक शेष :—			
i) ध्रौव्य निधि (बैंक नियत जमा राशि)	6,58,406.96	7,19,305.48	7,19,305.48
ii) बैंक बचत खाता	21,630.90	19,487.96	31,983.30
iii) नकद राशि	1,043.16	22.41	3,354.61
समिति–सदस्यता शुल्क	2,660.00	2,658.00	3,558.00
शोधादर्श–ग्राहक शुल्क आदि	700.00	475.00	826.00
दान–सहायता	304.00	—	212.00
साहित्य विक्रय केन्द्र	56.00	141.75	500.00
शोध पुस्तकालय:			
सदस्यता शुल्क व जमानत	—	297.00	110.00
शासकीय अनुदान	—	—	498.00
बैंक ब्याज	47,580.41	49,380.34	50,204.55
ध्रुव फंड में नियत खाता पुनर्नियोजन से वृद्धि	32,677.17	—	47,610.82
अन्य	—	300.00	2.00
कुल योग	7,65,058.60	7,92,067.94	8,58,164.76

आय-व्यय विवरण अप्रैल १९९२ – मार्च १९९५

व्यय

	1992-93	1993-94	1994-95
शोध पुस्तकालय	4,296.75	2,501.25	3,630.95
शोधादर्श–प्रकाशन एवं वितरण	7,390.00	11,036.00	11,330.00
तीर्थंकर छात्र सहायता कोष	7,772.00	15,337.00	10,845.00
महावीर जन कल्याण निधि	2,945.00	6,370.30	2,938.00
साहित्य विक्रय केन्द्र	402.00	97.00	—
बैठक एवं समारोह	1,450.00	1,950.00	—
साज-सज्जा	—	—	1,300.00
Registration Renewal	—	133.00	—
आयकर	1,987.00	—	—
योग	26,242.75	37,424.55	30,043.95
अन्तिम शेष			
i) ध्रुव फंड	7,19,305.48	7,19,305.48	7,96,916.30
ii) बैंक बचत खाता	19,487.96	31,983.30	30.671.85
iii) नकद राशि	22.41	3,354.61	532.66
कुल योग	7,65,058.60	7,92,067.94	8,58,164.76

(पृष्ठ ८५ से आगे)

उपरान्त उनकी दोनों बगल में अपने दोनों हाथ डालकर उठाकर कुछ दूर तक साथ-साथ चले। हमको बड़ा ही विचित्र दृश्य देखने को मिला।

— श्री हुकम चन्द जैन
मेरठ

शोधादर्श पत्रिका के प्रत्येक अंक प्राप्त हो रहे हैं। मै इस पत्रिका को बड़े ध्यानपूर्वक पढ़ता हूँ। आपकी लेखनी की मैं प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। आप जो भी समाचारों पर विमर्श करते हैं वह अत्यन्त उपयोगी बन जाता है। आपके लेखों की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। मै हृदय से आपकी समालोचना का स्वागत करता हूँ और आशा करता हुं कि इसी प्रकार समाज के सामने नकाबपोशों की नकाब को दूर कर असली चेहरा सामने लाने में समाज की मदद करते रहेंगे।

— डा० हरिश्चन्द्र जैन शास्त्री
मुरैना

सुदा की भाँति यह पुष्प भी सुरभिमय है।

— डा० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी
वाराणसी

शोधादर्श का २४वां अंक मिला। इस अंक में 'धर्म मंगल' के विचारों पर 'संपादकीय' में जो सटीक विचार प्रकट किये गये हैं इसके लिये श्री अजित प्रसाद जी को धन्यवाद देती हूँ। साथ ही पेज ६५ पर पू० शांतिसागर विशेषांक पर आपने जो अभिप्राय लिखा है वह भी अत्यन्त आनन्द दे गया।

कृपया अनुमति दीजिये कि यह संपादकीय लेख **धर्म मंगल** में कुछ संपादन के बाद छाप सकूं। लेख बड़ा ही सटीक लगा। 'सम्मेदशिखर वस्तुस्थिति' श्री एम० एल० जैन जी का लेख भी सुन्दर अभ्यासपूर्ण है। इसे भी धर्म मंगल में देना चाहती हूँ। कृपया अनुमति भेजिये।

— प्रा० सौ० लीलावती जैन
जलगांव

स्व० डा० ज्योति प्रसाद जी द्वारा स्थापित **शोधादर्श** बराबर पढ़ने को मिल जाता है। इसमें जो सामग्री दी जा रही है वह पठनीय और तथ्यात्मक रहती है।

— रत्नेश कुमार जैन
राँची

वर्ष-७, अंक-१ से हम **अर्हत् वचन** पत्रिका में एक नया स्तम्भ Notices of Publication प्रारम्भ कर रहे हैं। इसमें जैन विद्या की अन्य शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित आलेखों को सूचित किया जायगा जिससे हमारे पाठकों को, विशेषत: प्रवासी पाठकों को, भारत में हो रही जैन विद्या विषयक नवीनतम शोधों एवं अन्य शोध पत्र-पत्रिकाओं से अवगत कराया जा सके।

आपकी पत्रिका **शोधादर्श** का चयन इस श्रेणी में किया गया है। हम आपकी पत्रिका के चुनिन्दा आलेखों को अपने स्तम्भ में संकलित करेंगे।

— डा० अनुपम जैन
सारंगपुर

शोधादर्श का अंक २४ प्राप्त हुआ। पढ़कर अति प्रसन्नता हुई। आप लोग जिस उदार सच्चे और कर्मठता की भावना से जैन धर्म की, संस्कृति तथा साहित्य की, सेवा कर रहे हैं उससे न ही सिर्फ जैन समाज बल्कि सम्पूर्ण बौद्धिक समाज आपके प्रति कृतज्ञ है।

— श्रीमती सुधा जैन रानीवाला
खुर्जा

'**शोधादर्श**' पत्रिका मिली, पढ़ी बैठकर शान्त।
जिज्ञासा के भाव जगे, मन हो गया प्रशान्त ॥ १ ॥
साहित्यिक पत्रिकाओं में, बना लिया आदर्श।
नाम है उसका सुनो ! भाई **शोधादर्श** ॥ २ ॥
अन्वेषण के मार्ग में, लोग लगे दिन - रात।
मनोयोग से लीन हो, ज्ञान गहन पा जात ॥ ३ ॥
सामाजिक अरु धार्मिक, राजनीति - इतिहास।
समसामयिकता सहित, 'निज' पर करे प्रकाश ॥ ४ ॥
विश्व - विश्रुत व्यक्तित्व ने, बहुत किये उपकार।
जैनागम का जगत में, कीना सदा प्रचार ॥ ५ ॥
हम सब उनके चिर ऋणी, कर्ज करें स्वीकार।
करके उनका अनुसरण, व्यक्त करें आभार ॥ ६ ॥
कैसे - कैसे हो गये, पूर्व पुरुष विद्वान।
करते हैं उनका स्मरण, थे जो महिमावान ॥ ७ ॥

स्मृति उनकी बनी रहे, है कर्त्तव्य महान् ।
इस दिशा में अनुगमन करें, **शोधादर्श** प्रमाण ।। ८ ।।
करूँ प्रार्थना 'वीर' से, नित - प्रति होय विकास ।
अनेकान्त - स्याद्वाद पर, खुलकर करें प्रकाश ।। ९ ।।
अपवादों से बची रहे, हो विवाद से दूर ।
'सन्मति वाणी' से सदा, बनी रहे भरपूर ।। १० ।।

— प्रो० शील चन्द्र जैन
छिन्दवाड़ा

शोधादर्श का अंक २४ मिल गया था । आप इस जर्नल के नाम के अनुरूप शोध व आदर्श दोनों के अथवा आदर्श शोध के मान दण्ड स्थापित कर रहे हैं । अधिकतर जैन पत्रिकाएँ एकान्तवादी और आग्रह ग्रसित हैं—ऐसे माहौल में आप एक दीप स्तम्भ हैं । सारांश में, आपका जर्नल ऊँचे स्तर का है और आप इसके लिए बधाई के पात्र हैं ही । कुछ बातों पर मेरे विचार इस प्रकार हैं—

सम्मेद शिखर—(१) मैंने जो विवाद का वृतान्त लिखा है उसमें केवल वस्तुस्थिति ही सामने रखी है और छींटाकशी से दूर रहकर भाषा समिति का पालन किया है और मेल-मिलाप की कामना की है । आपको अच्छा लगा इसके लिए आभारी हूँ ।

(२) किन्तु समस्या सुलझती नजर नहीं आ रही । उपवास के अथवा जुलूसों के कार्यक्रमों से सफलता मिलेगी यह तो केवल मृग मरीचिका ही है परन्तु इस आन्दोलन से दि० जैन समाज में एकता बढ़े और समस्या क्या है यह घर-घर में समझ ली जाए और हार मान कर शैथिल्य न आ जाए, यह एक उपलब्धि अवश्य होगी । जागरूकता से शक्ति संचार होता है; यह हमारे लिए उपयोगी है । यह एक भावनात्मक सवाल भी तो है ।

(३) राज्यों में संविधान की धारा २१३ के तहत उस सूरत में सरकार अध्यादेश जारी कर सकती है जब कि विधान मण्डल का सेशन न हो । इसके लिए शर्त यह है कि यदि ऐसे आर्डिनेंस से किसी ऐसे कानून पर प्रभाव पड़े जो संसद द्वारा बनाया जा चुका है अथवा जिसे बनाने में केवल संसद ही सक्षम है तो वह केन्द्रीय सरकार (प्रेसीडेंट) की पूर्वानुमति के बिना नहीं बनाया जा

सकता। पूर्वानुमति से बनाया गया आर्डिनेंस विधान मण्डल से पास कराया जाना आसान होता है और उस पर आवश्यक्तानुसार प्रेसीडेंट की स्वीकृति मिलनी भी आसान रहती है।

अब, चूंकि बावजूद पुरजोर कोशिश यह पूर्वानुमति नहीं मिल पाई है और न ही निकट भविष्य में इसकी कोई संभावना है, ऐसी सूरत में रास्ता यह है कि (अ) जब कभी विधान सभा गठित हो तो बिहार सरकार अपनी विधान सभा में इसे पारित कराए, इस कानून के प्रावधानों में ऐसी कोई बात नहीं है जिसके लिए प्रेसीडेंट की स्वीकृति ली जाए, स्वयं गवर्नर इसकी स्वीकृति दे सकते हैं, अथवा (ब) हाईकोर्ट बेंच रांची में चल रही अपीलों का फैसला कराने में जल्दी की जाए। मेरा अभिमत है कि फैसला दिगम्बरों की मांग के अनुरूप ही होगा। बिहार में अब जो भी सरकार आएगी वह इतनी ताकतवर व न्याय-प्रिय होगी कि बावजूद साधन सम्पन्न प्रतिपक्षी के रहते, कोई कानून बना सके—इस बात में मुझे पूरा सन्देह है। इसका यह मतलब नहीं कि जो बात हाथ में ली है उसे पूरा न किया जाए। इस विषय पर मैंने एक सुझाव दिया था कि कानून विदों की एक गोष्ठी बुलाई जाए और उसमें सब मुद्दों पर बहस होकर एक वजनदार बहस की तैयारी की जाए परन्तु ऐसा सुझाव पसन्द नहीं किया गया। बात आगे नहीं बढ़ी। ऐसी धारणा बनी है कि अदालतों से कुछ नहीं मिलेगा।

आचार्य विवाद—कुछ लोग चंद मुनियों की प्रेरणा से यह विवाद उठा रहे हैं कि आचार्य शांतिसागर जी के पहले भी कोई आचार्य हुए हैं—यही नहीं उनकी तस्वीरों को मंदिरों से हटाया जा रहा है और उनकी जगह आदिसागर अंकलीकर जी की तस्वीरें लगाई जा रही हैं। पर्चेबाजी हो रही है और हो रही हैं अदालतों में जाने की तैयारियां। यह सब हमारे दुर्भाग्य के ही प्रतीक हैं। ऐसा ही कुछ कानजी स्वामी को लेकर हुआ था, सिर फूटे थे, किन्तु लगता है वह जोश अब खत्म हो चुका है। मुझे लगता है कि इस युग में कोई मोक्ष नहीं जा सकता इस नियम के पीछे शायद यह समझ रही हो कि इस युग में किसी मानव के लिए यह संभव ही नहीं है कि वह कषायों पर विजय पा सके चाहे वह जैन मुनि ही क्यों न बन जाए। खैर **धर्म मंगल** पत्रिका का विशेषांक निकालकर श्रीमती लीलावती ने स्थिति को पूरी तरह साफ कर दिया है परन्तु क्या ऐसे विवाद में पड़ना उतना ही अनुचित नहीं जितना इस विवाद को खड़ा

करना। एक ओर ऐसे लोग भी तो हैं जो उनकी स्वर्ण पादुकाएं स्थापित कर रहे हैं और जिस विषय पर आप अपने प्रखर विचार प्रस्तुत कर ही चुके हैं। शांतिसागर मुनिवर का महत्व इस बात में नहीं है कि वे इस युग (सदी) के प्रथम दि० आचार्य हैं। अब तो आचार्यों का सैलाब आया हुआ है; परन्तु यह भी तो सही है कि शांतिसागर जी के पहले भी अनेक आचार्य हुए हैं। अतः इस बात से कोई फरक नहीं पड़ता कि वे पहले थे या दूसरे। उत्तरी भारत में दिगम्बरत्व को जो पुनर्जन्म उनने दिया और उसको सम्मान जनक व गौरवशाली बनाया इस बात से जो इंकार करना या उनका अपमान करना चाहते हैं वे कृतघ्न तो हैं ही, अपने पैरों पर ही प्रहार कर रहे हैं। ऐसे बन्धुओं को अपने पर ही छोड़ देना चाहिए। उनके हटने से, जैन जनमानस पर अंकित शांतिसागर जी की छवि हटाई नहीं जा सकेगी। इन लोगों का प्रयास आकाश पर थूकने के समान है। मुझे तो इन अल्पज्ञों पर तरस आता है। ऐसा ही एक दल और है जो कहता है विधवा विवाह न हो, विवाह केवल सजातीय हो, क्या करें इन मूर्खों का? इनको एक तरफ करके आगे तरक्की व जागरण के रास्ते पर बढ़ने में ही शक्ति का उपयोग होना चाहिए।

समयसार की भाषा का विवाद—'प्राकृत विद्या' व 'अनेकान्त' के सम्पादक इस वार्ता में उलझे हुए हैं कि क्या समयसार की भाषा में परिवर्तन किया जा सकता है या नहीं। मेरे विचार से यह विवाद भी व्यर्थ ही था किन्तु थमने का नाम ही नहीं लेता। अनेकान्त वर्ष ४७ किरण ४ अक्तूबर-दिसम्बर १९९४ पृ० २० पर आपने मेरा अभिमत पढ़ा ही होगा। समयसार के बीसों संस्करण निकल चुके हैं और आगे भी लोग निकालेंगे, उनकी भाषा पर कहां-कहां नियंत्रण रखा जा सकेगा। इसके अलावा यह भी क्या दृढ़ता के साथ कहा जा सकता है कि समयसार आगम की परिभाषा में आता भी है?

किन्ही महारथियों ने यह भी विवाद उठाया है कि 'अरिहंताणं' सही है या अरहंताणं या अरुहंताणं। क्या णमोकार जैन शौरसेनी प्राकृत का है अथवा केवल शौरसेनी का या अन्य किसी प्राकृत का। मैंने णमोकार पर एक लेख दि० जैन महासमिति पत्रिका में लिखा है जो १-१५ नवम्बर १९९४ के अंक में छपा है।

— न्यायमूर्ति एम० एल० जैन
नई दिल्ली

I have great appreciation for your bold enlightening Editorial 'श्रमणाचार के नए आयाम', wherein you have presented an obnoxious picture of scandalous behaviour of a Digambara Muni. The only remedy for this is that our Sravakas should not recognise such of these persons as Munis. Apart from this there is another factor of wider range, which causes annoyance for us very often. Our Muni Sanghas, perhaps with the exception of one or two, move on the roads in the company of Sadhvis (Ksullikas, Aryikas) and also stay with them with no restriction in a single apartment and due to this we are subjected to humiliation as our non-Jain friends make a query about this practice and mock at us. When Svetambara Muni Sanghas normally keep away from Sadhvi Sanghas, why such a heinous practice of keeping together with Sadhvis is there with our Digambara Muni Sanghas ?

Not only editorial, but even the other articles are very informative and fine. Both the गुरुगुण-कीर्तन and 'Pre-Mediaeval Jain Novels' are helpful for researchers. 'अनेकान्तवाद-व्यवहारिक जीवन में' gives a new insight and 'अनेकान्त का उपयोग' gives direction for its interpretation keeping in view its utility in our practical life. 'सम्मेदशिखर-वस्तुस्थिति' enlightents, people like me, on the sad plight of Digambara community at least for having Darsana with devotion.

The biographical note on 'पं० अजित प्रसाद' is very appreciable and worthy of note. I had read about

Ajitasrama in one or two issues of Jaina Antiquary, but knew little about this noble person. In addition, mention of the names of other stalwarts of our community has enriched the value of the article. I wish आप्तमीमांसा with translation should have been published.

'बुन्देली जैन कवि श्री नन्दनन्द' is interesting and provides good material for those who are conducting research on Jain poets. 'उमास्वामी श्रावकाचार—एक अध्ययन' is really a piece of research and cautions us to be careful in determining the truth of the authorship and the age of a work. The rest of the contents also are praise worthy.

The Hindi version of my Introductory Note 'षड्-दर्शन संग्रह-परिचय' from Kannada is by Sri Suresh Kumar, M.A., which, I feel, should have been mentioned.

— Prof. Dr. M. D. Vasantha Raj
Mysore

शोधादर्श का २४वां अंक प्राप्त हुआ। अब तो शोधादर्श ने जैन पत्र-पत्रिकाओं के बीच अपने पांव पूरी तरह जमा लिये हैं। डॉक्टर साहब (डॉ० जे० पी० जैन) के सपनों को पूरा करने में आप लोगों की मेहनत, तत्परता और लगन तथा उत्साह ने सही रूप में महान योगदान दिया है।

— डॉ० विनोद कुमार तिवारी
रोसड़ा

पुनरावलोकन

शोधादर्श १-२५

पुनरावलोकन —डा० शशि कान्त ९७
लेखक-लेख अनुक्रमणिका १०१
शोध सारांश ११०
शोध कण १११
चिन्तन कण १११
विचार बिन्दु ११२
सम्पादकीय अग्रलेख ११२
परिचर्चा ११२
समाचार विमर्श ११३
गुरुगुण-कीर्तन ११४
रिपोर्ट ११५
सम्पादकीय ११६
Extracts ११७
पद्य रचनायें ११७
पुस्तक खण्ड ११९
साहित्य सत्कार (समीक्षा) ११९
विविध स्तम्भ ११९
पारखी पाठक १२०

पुनरावलोकन

विद्वत्वर्य इतिहास-मनीषी डा० ज्योति प्रसाद जैन की प्रेरणा एवं उन्मुक्त सहयोग से तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, द्वारा एक शोध-पत्रिका **शोधादर्श** के नाम से निकालने का निर्णय १९८५ में लिया गया था। इस पत्रिका का प्रथम अंक ६ फरवरी, १९८६, को डॉ० साहब के सम्पादन में प्रकाशित हुआ था। अपने सम्पादकीय में उन्होंने इस प्रकार की शोध-पत्रिका के प्रकाशन की आवश्यकता और उस आवश्यकता के परिप्रेक्ष्य में इस चातुर्मासिक शोध-पत्रिका को प्रकाशित करने का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लिखा था कि "किसी भी विषय के विशेषाध्ययन में शोध-खोज एक अनवरत् प्रक्रिया है। पूर्व-काल में जब तक विश्वविद्यालयी डॉक्टरेट उपाधि के लिए पंजीकृत शोध-प्रबंध लिखने की प्रवृत्ति अति विरल रही, स्व० आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर' एवं पं० नाथूराम 'प्रेमी' प्रभृति कई मनीषी पुरातन ग्रंथों की शोध-खोज, उनके तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन, व्याख्या, विवेचन आदि में संलग्न रहे। उन्हीं से प्रेरणा लेकर अथवा उन्हीं का मार्गानुसरण करके अनेक विद्वान इस कार्य में प्रवृत्त होते रहे। फलतः अनेक अप्रकाशित ग्रंथों के विस्तृत प्रस्तावनाओं से युक्त सुसम्पादित संस्करण प्रकाशित हुए। साथ ही विश्वविद्यालय स्तर के पंजीकृत शोध-कार्य का भी द्रुत वेग से विस्तार होता गया, और अब तक जैन-विद्या के विभिन्न अंगों एवं पक्षों पर लगभग तीन सौ शोध-प्रबंध स्वीकृत हो चुके हैं। इन शोधार्थियों के कार्य में जैन शोध संस्थानों, शोध पुस्तकालयों और शोध पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान है। स्वयं हमारे तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०, लखनऊ, के शोध पुस्तकालय से गत दस वर्षों में शताधिक शोध छात्र-छात्रा, अध्यापकों, आदि ने लाभ उठाया। वर्तमान में लगभग आधी दर्जन स्तरीय जैन शोध पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हो रही हैं, तथापि उपरोक्त समिति एवं शोध पुस्तकालय के संचालकों ने प्रस्तुत **शोधादर्श** के रूप में एक चातुर्मासिक शोध-पत्रिका प्रकाशित करने का निर्णय लिया, जिससे कि वह वर्तमान शोध प्रवृत्तियों को दर्पणवत प्रतिबिम्बित करने और उनमें योग देने में यथाशक्य प्रयत्नवान हो सकें।"

डॉ० साहब के सम्पादन में इस पत्रिका के ६ अंक प्रकाशित हुए जिनमें उन्होंने पत्रिका के स्तर के लिए एक मानदण्ड सुनिश्चित कर दिया और इसका एक

प्रारूप भी व्यवस्थित कर दिया। ११ जून, १९८८, को डॉक्टर साहब देहमुक्त हो गए। परन्तु इस पत्रिका के रूप में वह आज भी हमारे बीच विद्यमान हैं और उनके विचार तथा लेखन हमें निरंतर उस आदर्श की ओर उन्मुख करते रहते हैं जो उन्हें अभिप्रेत था।

शोधादर्श का रजत पुष्प (२५वां अंक) सुधि पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें एक प्रकार का आत्म-तोष है कि इन २५ अंकों में हम २००० पृष्ठों की मननीय शोध-परक सामग्री प्रकाशित कर सके हैं जिसका प्रतिष्ठित विद्वानों और प्रबुद्ध पाठकों ने हृदय से स्वागत किया है; १०१ पाठकों के प्रेरणादायक एवं उत्साहवर्धक सराहना-पत्र हमें इस बीच प्राप्त हुए है। इन पत्रों को हम प्रकाशित करते रहे हैं क्योंकि सभी में कुछ-न-कुछ अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण जानकारी एवं वैचारिक प्रतिक्रिया सन्निहित रहती है। इस अंक में भी 'पाठकों की दृष्टि में' स्तम्भ के अन्तर्गत १४ पत्र प्रकाशित हैं जो मननीय सूचनाओं एवं विचारों से भरपूर हैं।

जो विविध सामग्री इन २५ अंकों में अब तक प्रकाशित हुई है उसका एक अनुक्रमणिकात्मक विवरण अगले पृष्ठों में दिया जा रहा है। उससे विदित होगा कि ६५ विद्वानों के १६३ शोध-परक लेख, १५ शोध सारांश, ३१ शोधकण/चिन्तन कण/विचार बिन्दु, १४ रचनाकारों की २७ पद्य रचनायें और १०१ पारखी पाठकों के १८४ अभिमत/विचार/प्रतिक्रिया, अलावा अन्य विविध सामग्री यथा गुरु-गुण कीर्तन, सम्पादकीय अग्रलेख एवं निवेदन, परिचर्चा, विविध रिपोर्टें, समाचार-विमर्श, साहित्य समीक्षा, समाचार-विविधा आदि, इन अंकों में प्रकाशित हुए हैं।

Jina-Manjari, धर्म मंगल, तीर्थंकर, राष्ट्र चेतना, महासमिति पत्रिका, वीर, णाणसायर, समन्वय वाणी, अनेकान्त, जैन प्रकाश और **सन्मति सन्देश** प्रभृति पत्रिकाओं ने **शोधादर्श** में प्रकाशित सामग्री को पुनः प्रकाशित किया है, **Jain Journal** और **तित्थयर** प्रकाशित लेखों की सूचना देते रहे है, और **अर्हत् वचन** प्रकाशित लेखादि को उद्धृत करना चाहता है—यह इसमें प्रकाशित सामग्री की गुणवत्ता का द्योतक है।

साहित्य सत्कार/समीक्षा के अन्तर्गत एवं अन्यत्र ३४६ पुस्तकों-पुस्तिकाओं और पत्र-पत्रिकाओं का निष्पक्ष एवं सटीक मूल्यांकन किया गया है। ११२

समीक्षायें डॉ० ज्योति प्रसाद जैन द्वारा की गईं थीं; २ समीक्षायें डॉ० शील चन्द जैन द्वारा, ३१ समीक्षायें श्री रमा कान्त जैन द्वारा और ६४ समीक्षायें श्री अजित प्रसाद जैन द्वारा की गई हैं, अलावा ६६ मूल्यांकनों के जो सम्पादक द्वारा किये गये हैं। विद्वत्जगत में **शोधादर्श** के मान का यह भी एक लक्षण है।

हम उन सभी लेखक मनीषियों के प्रति जिन्होंने समय-समय पर अपनी बहुमूल्य शोध परक/मननीय/चिन्तनीय रचनाओं को प्रकाशित करने का हमें अवसर प्रदान किया, और उन सभी लेखकों, सम्पादकों एवं प्रकाशकों के प्रति जिन्होंने हमें अपने प्रकाशनों की समीक्षा का दायित्व दिया, तथा उन सभी सुधि पाठकों के प्रति जिन्होंने अपने पत्रों द्वारा हमारा उत्साहवर्धन किया—हृदय से आभारी हैं। श्रद्धेय डॉक्टर साहब का आशीर्वाद हमें अपने इस लघु प्रयास में अभी भी प्रेरणा और सम्बल प्रदान कर रहा है। तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के मंत्री श्री अजित प्रसाद जैन जो **शोधादर्श** के प्रकाशक और प्रबन्ध सम्पादक भी हैं, अपने निरन्तर मार्ग दर्शन से हमें प्रोत्साहित करते रहते हैं तथा अपने निर्भीक विचारों द्वारा उन्होंने पत्रिका को विशिष्ट सम्मान के योग्य बनाया है। श्री रमा कान्त जैन के उन्मुक्त सहयोग और उनके द्वारा उसके विभिन्न स्तम्भों के लेखन-सम्पादन की **शोधादर्श** का स्वरूप निर्वहन एवं परिष्कृत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। उसके मुद्रण एवं वितरण के दायित्व का निर्वाह श्री नलिन कान्त जैन द्वारा सुचारु रूप से किया जाता रहा है। समिति के अध्यक्ष श्री सुमेर चन्द पाटनी, कोषाध्यक्ष श्री विजय लाल जैन तथा अन्य सभी पदाधिकारियों और सदस्यों का उन्मुक्त सहयोग हमें प्राप्त रहा है। ये सभी हमारे अपने हैं और **शोधादर्श** परिवार के सदस्य हैं अतः इनका आभार मानकर मात्र एक औपचारिकता का निर्वाह करना होगा।

अन्त में, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०, पर भी एक निगाह डालना उचित होगा। इस समिति का गठन उत्तर प्रदेश शासन की श्री महावीर निर्वाण समिति के उत्तराधिकारी के रूप में १९७५ में किया गया था और २९.३.१९७६ को इसका विधिवत रजिस्ट्रीकरण सोसायटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट के अन्तर्गत सम्पन्न करा लिया गया था। श्री अजित प्रसाद जैन, जो शासकीय समिति के भी उप सचिव थे, का संस्थापक-मंत्री के रूप में इसको एक स्वरूप प्रदान करने और उसकी विभिन्न गतिविधियों एवं कार्यकलापों को

सुनियोजित ढंग से आगे बढ़ाने में विशेष श्रेय रहा है। यह अतिशयोक्ति नहीं होगी यदि कहा जाय कि वह इस संस्था के शलाका पुरुष (key person) हैं। उनके अग्रज डॉ० ज्योति प्रसाद जी का मृत्युपर्यन्त अनन्य सहयोग और मार्ग दर्शन श्री अजित प्रसाद जी के लिए अपनी कार्यविधि को आगे बढ़ाने में विशेष सम्बल रहा। मार्च १९७६ में संस्थापना से अब तक १९ वर्षों में संस्था की निम्नलिखित उपलब्धियां रहीं—

(१) ध्रौव्य फण्ड रु० १ लाख से बढ़कर लगभग रु० ८ लाख हो गया;

(२) पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या ३,६४० हो गई जिनका मूल्य रु० ७८,०००/- से अधिक है;

(३) ३६१ छात्र-छात्राओं को रु० ७२,०००/- से अधिक की अध्ययन सहायता प्रदान की गई;

(४) ७८ असहाय व्यक्तियों को तथा भूकम्प राहत कोष में रु० ३७,५००/- से अधिक की सहायता प्रदान की गई;

(५) **भगवान महावीर स्मृति ग्रन्थ** के अतिरिक्त निम्नलिखित उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन किया गया—

डॉ० ज्योति प्रसाद जैन द्वारा प्रणीत : **आदितीर्थ अयोध्या**

Bhagwan Mahavira, Life, Times & Teachings

Way to Health & Happiness : Vegetarianism

प्रो० अनन्त प्रसाद जैन द्वारा प्रणीत : **जीवन रहस्य एवं कर्म रहस्य**

Mysteries of Life and Eternal Bliss; तथा

(६) **शोधादर्श** के २५ अंकों में ९ वर्षों में २,००० पृष्ठों की उपयोगी सामग्री प्रकाशित की गई।

संस्था की ये उपलब्धियां किसी भी प्रकार न्यून नहीं कही जा सकतीं, और इसके लिए समिति के सभी सदस्यों और पदाधिकारियों के सहयोग एवं सद्भाव के साथ ही प्रधान श्रेय संस्थापक–मंत्री श्री अजित प्रसाद जी का है जो विगत ६ वर्षों से हृदय रोग से गंभीर रूप से पीड़ित होने के बावजूद इस सबके लिए व्यग्र, क्रियाशील एवं प्रेरक रहे हैं।

अक्षय तृतीया

२ मई, १९९५ ई०

— **शशि कान्त**

लेखक—लेख अनुक्रमणिका

लेखक	लेख	अंक	पृष्ठ
श्री अगर चन्द नाहटा :			
	1. कल्याण मंदिर स्तोत्र के रचयिता	15	29—32
श्री अजित प्रसाद जैन :			
	2. भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य और उनका समय	10	8—18
	3. श्राद्धपर्व दीपावली	10	60—61
	4. अग्रवाल जाति और जैन धर्म	11	20—27
	5. आधुनिक युग के आद्य शिक्षाविद् राजा शिव प्रसाद (जैन) सितारे हिन्द	13	35—37
	6. राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द	14	23—30
	7. अंग्रेजी जैन गज़ट	14	40
	8. ८६ वर्ष पूर्व अंग्रेजी जैन गज़ट	15	45—46
	9. जैन पत्रकारिता पर कुछ प्रश्न चिह्न	16-17	105—08
	10. एक ऐतिहासिक दस्तावेज़	18	9—16
	11. सन् 1920 के दशक की एक लघु तीर्थयात्रा—एक संस्मरण	22	56—59
	12. उमास्वामी श्रावकाचार—एक अध्ययन	24	53—57
श्री अंशु जैन 'अमर' :			
	13. पृथ्वीराज के इतिहास के जैन साधन	4	15—20
	14. कृतित्व जिसने एक व्यक्तित्व को महान बना दिया	7	42—44
डॉ० अनुपम जैन एवं श्री सुरेश चन्द्र अग्रवाल :			
	15. हेमराज, और उनका गणितसार	6	17—18
डॉ० अभय प्रकाश जैन :			
	16. हथफोर गुफा की रंगशाला	8	10—13
	17. मांडू और संगीतज्ञ मण्डन	9	28—30
	18. 'संगीत समयसार' और नादोत्पत्ति	10	19—23
	19. काम्पिल्य	11	15—17

20. राजा भोज का भोजपुर मन्दिर	14	20—22
21. ग्वालियर अंचल की जैन पुरा-सम्पदा	18	35—38
22. पवाया के प्रेक्षागृह	20	58—60
डॉ० अमर पाल सिंह :		
23. इतिहास–मनीषी की अनन्त यात्रा	7	4—06
पं० अमृत लाल शास्त्री :		
24. प्रतिक्रिया	21	13—16
डॉ० (श्रीमती) अलका अग्रवाल :		
25. पदार्थदीपिका के कर्त्ता	2	21—23
26. प्राकृत मुक्तक काव्य "वज्जालग्गं"	8	2—3,27
27. प्राकृत रसेतर मुक्तक काव्य	9	31—33
श्रीमती आशा सहारिया :		
28. स्वास्थ्य व आध्यात्मिकता का पारस्परिक संबंध	18	46—49
डॉ० (श्रीमती) इन्दु राय/रस्तोगी :		
29. 'बन्धन मुक्ति' : महावीर	1	10—12
30. प्रद्युम्न काव्य परम्परा	2	10—16
31. नेमिचन्द्रिका : एक अध्ययन	3	8—11
जस्टिस एम० एल० जैन :		
32. 'ध्यान' पर ध्यान ?	22	23—25
33. सम्मेदशिखर–वस्तुस्थिति	24	25—33
प्रो० एम० डी० वसन्त राज :		
34. षड्दर्शन संग्रह–परिचय	24	36—41
डॉ० ऋषभ चन्द्र जैन फौजदार :		
35. गुजरात में आचार्य कुन्दकुन्द की प्राचीन पाण्डुलिपियां	18	31—35
36. नियमसार के प्रकाशित संस्करण	21	32—36
37. अनेकान्त का उपयोग	24	22—24
डॉ० (श्रीमती) कमला जोशी/पन्त :		
38. जैन दर्शन एवं अन्य दर्शनों में मान्य मोक्षमार्गों का तुलनात्मक विवेचन	12	18—23

39. जैन दर्शन में लेश्या एवं विज्ञान सम्मत विद्युत धारा : एक तुलनात्मक दृष्टि	15	32—36
40. न्याय-वैशेषिक दर्शन और जैन दर्शन में "परमाणु"	16-17	23—30
श्री कुन्दन लाल जैन :		
41. काव्य शास्त्र के मर्मज्ञ जैन कवि— विजय चन्द्र वर्णी	12	32—35
42. कुन्दकुन्दाचार्य बनाम ककूदाचार्य	14	35—37
43 गोलाराड्—एक ऐतिहासिक विवेचन	16-17	31—40
44 पं० देवीदास भायजी कृत "प्रवचनसार"	20	47—53
45. बुन्देली जैन कवि श्री चन्दनन्द	24	34—36
डॉ० कुंवर लाल जैन :		
46. आदिदेव ऋषभ और महादेव शिव	10	24—28
डॉ० (श्रीमती) कुसुम पटोरिया :		
47. तीर्थंकर अरिष्टनेमि व कृष्ण	21	37—43
डॉ० केशव प्रसाद गुप्त :		
48. जैन स्रोतों के आधार पर चौलुक्यों का इतिहास	21	44—58
49. 'बसन्त विलास' में वर्णित धार्मिक तथ्य	22	48—56
श्री कैलाश भूषण जिन्दल :		
50. पं० अजित प्रसाद	24	44—52
51. जैनधर्म बिकाऊ है !	25	22—27
डॉ० कृष्णपाल त्रिपाठी :		
52. महाकवि रामचन्द्र सूरि : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	22	34—47
प्रो० खुशाल चन्द्र गोरावाला :		
53. अथ समयसार शुद्धि प्रकरण	20	23—26
श्रीमती गीता जैन :		
54. महंगा धर्म या महंगी साधना	16-17	56—58
55. क्षमापना पत्र या वैभवी दिखावा	20	64—67

डॉ० ज्योति प्रसाद जैन :

56. मुनीश्वर कुन्दकुन्दाचार्य		1	3—09
57. कुन्दकुन्द-युग के अन्य ग्रन्थकार	(i)	2	3—09
—तदैव—	(ii)	3	3—10
—तदैव—	(iii)	4	3—09
58. जैन रामकथा साहित्य की वर्गीकृत सूची		5	24—31
59. जैन इतिहास का एक स्वर्णिम युग— होयसल साम्राज्य काल		5	2—07
—तदैव—		6	2—09
60. नदिया एक, घाट बहुतेरे		6	19—22
61. क्षेमकीर्ति और क्षेमेन्द्रकीर्ति नाम के विभिन्न गुरू		8	13—16
62. कुमारसेन नाम के विभिन्न गुरू		9	33—38
63. कमलकीर्ति नाम के विभिन्न गुरू		10	5—07
64. कुलचन्द्र नाम के आचार्य		11	13—14
65. अहिच्छत्रा-इतिहास के आलोक में		12	6—14
66. मानव या पशु ?		13	25—34
67. भारतवर्ष का एक प्राचीन जैन विश्वविद्यालय		14	5—13
68. भारतीय साहित्य के निर्माण में जैनों का योगदान		15	6—18
69. महावीर और बुद्ध		16-17	7—12
70. श्रमण संस्कृति की प्राचीनता		18	6—08
71. जैन न्याय के सर्वोपरि प्रस्तोता श्रीमद् भट्टकलंकदेव		19	8-17, 35-36
72. समाज चेते, देश जागे !		20	4—08
73. धर्म क्या सिखाता है ?		21	5—08
74. आवश्यकता है धर्म को जीवन से जोड़ने की		22	4—07
75. मनुष्य के त्राण का अमोघ उपाय : धर्म		23	5—06
76. Pre-Mediaeval Jain Novels		20	3—05
77. जैन धर्म और संस्कृति		25	5—12

श्री जमना लाल जैन :

78. दिगम्बर जैन सैतवाल समाज के प्रति आचार्य समन्त भद्र महाराज का योगदान 20 54—56

79. केलझर का पुरातात्त्विक वैभव 23 45—46

श्रीमती जैनमती जैन :

80. 'कलिकाल सर्वज्ञ' आचार्य हेमचन्द्र सूरि 22 17-22, 26

डॉ० टी० वी० जी० शास्त्री :

81. प्राचीन जैन स्थल वड्डमानु का संरक्षण 23 46—47

श्री धर्मवीर :

82. मेरे धार्मिक गुरू 7 40—41

डॉ० नन्द लाल जैन :

83. The Jains Abroad 23 32—37

डॉ० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी :

84. जैन कला, एक सर्वेक्षणात्मक परिचय 20 27—31

डॉ० (श्रीमती) प्रेम कुमारी जोशी :

85. जैन धर्म–आधुनिक परिप्रेक्ष्य में 20 67—70

डॉ० बी० के० खड़बड़ी :

86. Sravakachara : Its significance and relevance in the present times 15 59—60

डॉ० (कु०) मनोरमा जैन :

87. जैन दर्शन में कर्म का स्वरूप— एक तुलनात्मक अध्ययन 19 28—33

श्री मनोज कुमार जैन 'निर्लिप्त' :

88 'शिव' का सही स्वरूप 20 61—63

डॉ० महेन्द्र नाथ सिंह :

89. उत्तराध्ययन सूत्र में वर्णित जैन साधना मार्ग 9 18—24

डॉ० योगेश चन्द्र जैन :

90. कुन्दकुन्द की दृष्टि में जैन श्रमण 9 12—17

91. समयसार और प्रवचनसार : एक अध्ययन 10 37—44

डॉ० रज्जन कुमार :

92.	जैन दर्शन की कर्म सम्बन्धी अवधारणा	11	27—37
93.	वैदिक-ब्राह्मणीय परम्पराओं में भगवान ऋषभ	15	37—44
94.	आकाश द्रव्य : एक विवेचन	20	32—40
95.	जैन एवं जैनेतर परम्पराओं में जीव तत्त्व	23	13—20

श्री रमा कान्त जैन :

96.	वड्डकहा	1	13—16
97.	कोण्डकुन्दे और आचार्य कुन्दकुन्द	2	17—21
98.	जैन कवियों की होली	4	21—23
99.	बीसवीं शताब्दी पूर्व के मराठी जैन लेखक	5	12—20
	—तदैव—	6	15—16
100.	जनगणना और जैन-1991 की जनगणना	12	48—51
101.	अनेकान्तवाद-व्यवहारिक जीवन में	24	12—21

श्री राकेश पाण्डेय :

102.	महोपाध्याय समय सुन्दर : जीवन वृत्त	20	40—46

श्री राज कुमार जैन :

103.	जैनायुर्वेद वाङ्मय-संक्षिप्त परिचय	3	19—21

डॉ० राजदेव दुबे :

104.	वैदिक वाङ्मय और पुरातत्त्व में तीर्थंकर ऋषभ देव	3	15—19
105.	जैन आचार-पद्धति में अचौर्य एवं अपरिग्रह अणुव्रत की अवधारणा	18	39—42

डॉ० राजेन्द्र कुमार बन्सल :

106	आचार्य कुन्दकुन्द : मोक्ष और मोक्षार्थी	6	9—15

श्री राजेन्द्र कुमार जैन :

107.	जैन समाज के समक्ष चुनौती	25	30—33

डॉ० (श्रीमती) रानी मजूमदार :

108.	जैन साहित्य के महाविद्वान हर्मन जैकोबी	18	49—52
109.	लोथर वेण्डेल	24	42—44

श्री रामजीत जैन :

110. विजयवर्गीयान्वय	13	5—11
111. सुप्रतिष्ठ निर्वाणक्षेत्र (गोपाचल)	14	18—19
112. गोलश्रृंगार	16-17	41—43
113. गंगेरवाल	19	34—35
114. बुढेले	20	57—58
115. गोपाचल—इतिहास के आलोक में	22	60—62

बा० रिखब दास :

116. Whom do the Jains Worship ?	13	44—49
117. The form of spirit and religion	15	46—51

श्रीमती वासंती शाह :

118. विज्ञानवादी धर्म का अवैज्ञानिक रुपान्तरण	25	28—30

डॉ० विजय कुमार :

119. जैन एवं बौद्ध दर्शनों में आत्मवाद	18	16—24

डॉ० विनोद कुमार तिवारी :

120. जैन सिद्धान्त में अजीव तत्त्व की उपयोगिता और महत्त्व	3	11—14
121. जैन दर्शन में मुक्ति : स्वरूप और प्रक्रिया	5	21—23
122. तीर्थंकर महावीर का निर्वाण स्थल : पावानगर	12	24—31
123. तीर्थंकर पार्श्वनाथ : एक ऐतिहासिक अध्ययन	14	31—34
124. वर्तमान संदर्भ में महावीर के उपदेशों का महत्त्व	16-17	43—46

कु० विभा जैन :

125. दिगम्बर मुनियों की जीवनचर्या	9	24—27
126. जैन दर्शन में ईश्वर तत्त्व	10	45—47
127. शब्द और भाषा	11	18—20

पं० विमल कुमार जैन सोरैय्या :

128. आगम परम्परानुसार पूजन विधि	23	21—26

डॉ० विलास संगवे :

129. Jain society through the ages	15	57—58

श्री वीर नन्दन जिन्दल (V. N. Jindal) :

130. The Irrelevance of It All	19	67—68
131. Prayer Power	23	47

श्री वेद प्रकाश गर्ग :

132. 'अग्रवाल' शब्द की प्राचीनता	22	63—65
133. कवि छीहल और उनकी रचनायें	25	34—39

डॉ० शशि कान्त :

134. भारत में लिपि की प्राचीनता	1	20—23
135. गुप्त साम्राज्य के जैन अभिलेख	2	24—27
136. इतिहास के प्रति दृष्टि	4	10—15
137. जीव और जगत के सम्बन्ध में विचारणा	9	40—46
138. धर्म : आडम्बर और यथार्थ	10	48—53
139. वर्द्धमान महावीर	11	3—12
140. संस्कृति का स्वरूप	12	14—17
141. 21वीं सदी में जैन धर्म की भूमिका	13	37—39
142. The Jaina Gazette	13	49—51
143. जिन शासन और सामाजिक न्याय	14	38—39
144. Environment and Religion	15	61—66
145. मानव सभ्यता के आदि प्रस्तोता—ऋषभदेव	16-17	12—23
146. भगवान महावीर और उनका जीवन दर्शन	18	43—45
147. चीन और जापान के राष्ट्रीय चिन्तन पर भारत की बौद्ध विचारधारा का प्रभाव	19	23—28
148 डॉ० माइकेल टोबियास की फिल्म	19	69—73
149. Non-Violence in Action	20	71—75
150. अग्रवाल जाति का उद्भव	22	65—69
151. भगवान महावीर और उनकी विश्वमंगल की भावना	23	27—31
152. भगवान महावीर : दार्शनिक चिन्तन को नई दिशा	25	20—21

डॉ० शिव प्रसाद :
153. काशहृदगच्छ का इतिहास : एक अध्ययन 22 26–33
डॉ० शील चन्द्र जैन :
154. आचार्य सन्मतिसागर जी कृत कुरल–काव्य (कुन्दकुन्द गीता)—एक अनुचिन्तन 19 64—66
डॉ० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी :
155. थुवैन–हनुमान और मुनियुगल 1 17—19
श्री सन्दीप कान्त जैन :
156. एक मूर्धन्य जैन विद्वान का अवसान 7 43
डॉ० सागर मल जैन :
157. जटासिंहनन्दि का वराङ्गचरित और उसकी परम्परा 19 37—50
श्रीमती सुधा जिन्दल :
158. मगधराज कुणिक–अजातशत्रु (नाटक) 18 53—64
डॉ० (श्रीमती) सुनीता कुमारी :
159. जैन पुराणों में लोक सम्बन्धी अवधारणा 18 24—31
श्री सुरेश जैन :
160. Save Planet through Eco–Jainism 25 46—49
डॉ० (कु०) सुषमा जैन :
161. आचार्य अमितगति : व्यक्तित्व और कृतित्व 8 4—09
162. 'सुभाषित–रत्नसंदोह'— नैतिक शिक्षाओं का अपूर्व भण्डार 13 19—24
डॉ० हुकुम चन्द्र जैन भारिल्ल :
163. जैन दर्शन के तीन अकार : अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह 22 70—74

शोध सारांश

(अ) शोध-प्रबन्ध :	शोधकर्त्ता	अंक	पृष्ठ
1. संस्कृत के जैन सन्देश काव्य	–डॉ. (कु.) कल्पना देवी	10	53—59
2. जैन दर्शन में कर्म सिद्धान्त : एक अध्ययन	–डॉ. (कु.) मनोरमा जैन	12	57–58
3. भट्टाकलंककृत लघीयस्त्रय : एक दार्शनिक अध्ययन	–डॉ. हेमन्त कुमार	13	12—18
4. राज्य संग्रहालय लखनऊ की जैन प्रतिमायें (एक प्रतिमा-शास्त्रीय अध्ययन)	–डॉ० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी	13	40—43
5. हरिभद्रसूरि कालीन भारत	–डा. राम सजीवन शुक्ल	14	14–17, 20
6. बालचन्द्रसूरिकृत बसन्त विलास महाकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन	–डॉ. केशव प्रसाद गुप्त	16–17	69—76
7. प्रमुख जैनाचार्यों की योग दर्शन को देन	–डॉ. (कु.) अरुणा आनन्द	18	73—77
8. प्राकृत मुक्तक काव्य वज्जालग्गं : एक अध्ययन	–डॉ. (श्रीमती) अलका अग्रवाल	19	18—22
9. संस्कृत काव्य के विकास में बीसवीं शताब्दी के जैन मनीषियों का योगदान	–डॉ. नरेन्द्र सिंह राजपूत	19	53—55
10. मेरुत्तुङ्गाचार्यकृत प्रबन्ध-चिन्तामणि का एक आलोचनात्मक अध्ययन	–डॉ. यदुनाथ प्रसाद दुबे	19	56—64
11. जैन एवं बौद्ध शिक्षा दर्शन : एक तुलनात्मक अध्ययन	–डॉ. विजय कुमार	21	59—62
12. जैन कर्म सिद्धान्त और मनोविज्ञान	–डॉ. रत्नलाल जैन	21	63—69
13. नल विलास : एक आलोचनात्मक अध्ययन	–डॉ. कृष्ण पाल त्रिपाठी	21	70–76

14. आचार्य हेमचन्द्र :
व्यक्तित्व एवं कृतित्व –डॉ. (श्रीमती) अनिता श्रीवास्तव 25 39-45,49

(ब) शोध परियोजना :

15. पौराणिक सृष्टि :
वैज्ञानिक विश्लेषण –डॉ. (श्रीमती) सुनीता कुमारी 19 50—53

शोध कण— डॉ० ज्योति प्रसाद जैन :

1. सन् 1857 के अमर शहीद हुकम चन्द जैन 1 24—25
2. प्राचीन जैन मृण्मूर्ति 1 25—27
3. खतरगच्छ पट्टावली का लक्ष्मीपुर 1 27
4. महान गणितज्ञ महावीराचार्य 2 28—29
5. पद्मावतीपुरवालों की पद्मावती 2 29—31
6. प्राचीनतम हस्तलिखित कागदीय प्रति 2 31—32
7. रामकथा विषयक जैन साहित्य 3 21—23
8. आन्ध्र प्रदेश का प्राचीनतम जैन केन्द्र 3 23—25
9. 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दो जैन शहीद 3 25
10. जैन रामकथा विषयक शोध–प्रबन्ध 4 24—28
11. अमीर शहीद सार्बूलाल जैन 4 28—29
12. मांडु के किले में निकली पार्श्व प्रतिमायें 4 29
13. वज्रपाणि पंडित 5 32—33
14. सहारनपुर का एक ऐतिहासिक उल्लेख 5 33—34
15. दानवीर बाबू हर प्रसाद जैन 5 34—35
16. कुन्दकुन्द–द्विसहस्राब्दि ? 6 25—26
17. पार्श्व–पद्मावती का एक विचित्र मूर्तांकन 6 26—27
18. महान क्रान्तिकारी देशभक्त पं० अर्जुन लाल सेठी 6 27—29

चिन्तन कण :

1. णमोकार महामंत्र की ऐतिहासिकता पर एक दृष्टि –श्री अजित प्रसाद जैन 8 17—21
2. चम्पा के राजा श्रीपाल —तदैव— 8 22
3. णमो लोए सव्व साहूणं —तदैव— 12 44—46
4. वीर शासन जयन्ति —तदैव— 12 46—47

5. आसक्ति, अनासक्ति, विरक्ति —डा० शशि कान्त 24 79

विचार-बिन्दु :

1. राम जन्मभूमि और बाबरी मस्जिद : नया विभ्रम ? —डॉ० शशि कान्त 8 23—25
2. बाहुबलि की पूजनीयता ? ,, 8 25—27
3. यह कैसी पत्रकारिता —श्री अजित प्रसाद जैन 9 4—08
4. महाराष्ट्र के जैन कासार ,, 9 8—11
5. पहला विवाह क्या विधवा विवाह ही नहीं था ? ,, 16-17 46—47
6. क्या Kalanos (कल्याणमुनि ?) दिगम्बर जैन मुनि थे ? ,, 16-17 48-53,55
7. श्री अयोध्या जी तीर्थक्षेत्र का विकास ,, 21 26—30
8. और अब सिंहरथ भी " 21 30—31

सम्पादकीय अग्रलेख : श्री अजित प्रसाद जैन—

1. कलिकाल सर्वज्ञ 15 19—23
2. यह कैसा जीर्णोद्धार ? 15 23—27
(देवगढ़ जीर्णोद्धार पर अग्रतर टिप्पणी 16-17 119-20)
3. हस्तिनापुर क्षेत्र पर आतंक की काली छाया 15 28
4. षष्ठम पट्टाचार्य 18 2—05
5. कर्मयोगी 19 3—08
6. आगम और अवर्णवाद—एक चिन्तन 22 7—16
7. श्री सम्मेदशिखर विवाद विमर्श 23 7—12
8. यह कैसी पत्रकारिता 23 12
9. श्रमणाचार के नये आयाम 24 6—12
10. पंच-कल्याणक प्रतिष्ठाएं 25 13—19

परिचर्चा :

1. श्री बाहुबलि महामस्तकाभिषेक विमर्श :
श्री अजित प्रसाद जैन 21 16—19
श्री बाबू लाल जैन पाटोदी 21 19—20
श्री ज्ञानचन्द्र खिंदूका 21 20—23
श्री त्रिलोक चन्द्र जैन शास्त्री 21 23—25

2. Reaction and counter-action :
Inhuman Act : Dr. R. P. Agrawal 16–17 54
In Bad Taste : Smt. Manjari Jain 16–17 54–55

समाचार विमर्श : श्री अजित प्रसाद जैन—

1. ज्ञान मन्दिर का उद्घाटन 20 9
2. तीन–चौबीसी मन्दिर का शिलान्यास 10
3. श्री दिगम्बर जैन त्रिमूर्ति मन्दिर पंचकल्याणक 10—11
4. आचार्य सुशील कुमार द्वारा मुखपत्ति के त्याग की घोषणा 11—12
5. युग प्रधान दानवीर 12—13
6. प्रतिमा लेख मिटाने का कुकृत्य 13
7. अलकबीर 14—15
8. कर्नाटक के मुख्यमंत्री/सरकार व आचार्य विद्यानन्द 16
9. फरिश्तों के उतरने का स्थान 16—22
10. विद्वानों ने पास किये प्रस्ताव 21 9—13
11. धूम महा–महोत्सवों की 22 84—89
12. नेपाल में दो तीर्थंकरों के जन्मकल्याणक तीर्थ की स्थापना 89—90
13. सल्लेखना भंग कराई गई 90—91
14. तीस–चौबीसी मन्दिर का शिलान्यास 91—92
15. जब मुनियों ने सामूहिक अनशन किया 92—93
16. आचार्य पद त्याग 93
17. दान महोत्सव 23 53—54
18. ब्रह्मोत्सव सम्पन्न 54—55
19. सिंहरथ प्रवर्तन—एक नाटक 55
20. जैन विश्वविद्यालय का शिलान्यास 56
21. राजर्षि 56—57
22. भगवान महावीर का जीवन्त अभिनय– आचार्य श्री ने भी अभिनय किया 57—58
23. 'जैन प्रकाश' का आवरण चित्र 58—59

24. आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज की स्वर्ण पादुका 59—60
25. क्या मिलता है जैन धर्म का उपहास कराने में 60—62
26. श्री सम्मेदशिखर विवाद :
दो आचार्यों के मध्य सौहार्द वार्ता 24 67—68
27. करोड़पति दम्पति की वैराग्य साधना 68
28. मुनि कुमुदनंदि महाराज का आचार्य पद अलंकरण 68—69
29. जैन विश्वविद्यालय की प्रगति 69
30. और अब आचार्य कल्याणसागर महाराज की चरण पादुका 69
31. सदाचार भारती का भ्रष्टाचार प्रकोष्ठ 25 65
32. उपवास तपस्या का कीर्तिमान स्थापित 65
33. एक और राष्ट्रसंत हुए 66
34. साहित्य सम्राट बने 66
35. जैन एकता 67
36. भगवान महावीर फाउन्डेशन 67
37. आचार्य श्री का मोक्ष गमन 67—70
38. गिरनार जी में लाडू मेले 70—72
39. अभिनव श्रमणाचार 72—75

गुरुगुण-कीर्तन :

1. अमृतचन्द्राचार्य —संक. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन 1 1
2. आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त-चक्रवर्ती ,, 2 1
3. आचार्य अमितगति प्रथम एवं द्वितीय ,, 3 1
4. महापण्डित प्रभाचन्द्राचार्य ,, 4 1
5. वादिराज देव 'षट्तर्कषण्मुख',
'जगदेकमल्लवादि' ,, 5 1
6. वादीभसिंह अजितसेन ,, 6 1
7. अकलंक—माणिक्यनन्दि—प्रभाचन्द्र —संक. श्री रमा कान्त जैन 7 1
8. श्री पद्मनन्दि—श्री सकलकीर्ति ,, 8 1
9. श्री सिद्धसेन —श्री रमा कान्त जैन 9 1—03
10. कुन्दकुन्द ,, 10 1—03
11. उमास्वाति ,, 11 1—02

12. समन्तभद्र	—श्री रमा कान्त जैन	12	1—3
13. शिवकोटि	,,	13	1—4
14. कवि परमेश्वर	,,	14	1—4
15. महाकवि वीरनन्दि	,,	15	1—4
16. पात्रकेसरि	,,	16-17	1—3
17. गुणनन्दि	,,	18	1, 5
18. वीरसेन	,,	19	1—2
19. स्वयम्भू	,,	20	1—3
20. वादिराज	,,	21	1—4
21. जटासिंहनन्दि	,,	22	1—4
22. महाकवि धनञ्जय	,,	23	1—4
23. आचार्य रविषेण	,,	24	1—2
24. आचार्य अमृतचन्द्रसूरि	,,	25	1—4

रिपोर्ट :

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र० : श्री अजित प्रसाद जैन, मंत्री—

1. अधिवेशन दि. 6-2-1987		3	35—36
2. महावीर निर्वाण जयन्ति दि. 10-11-1988		8	40—42
3. समिति की मुख्य प्रवृत्तियां		14	71—72
4. प्रगति प्रतिवेदन 1987–91		15	81—87
5. प्रगति प्रतिवेदन 1991–92		18	83—85
6. साधारण सभा दि. 6-12-1992 की कार्यवाही		19	89—90
7. वीर शासन जयन्ति दि. 5-7-1993		20	82—84
8. कार्य कलाप 1993–94		22	96
9. सदस्यता शुल्क सम्बन्धी आवश्यक सूचना		23	69
10. शोध पुस्तकालय		24	66
11. प्रगति प्रतिवेदन 1992–95		25	81-84,86-87

इतिहास-मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन : रिपोर्ट–श्री रमा कान्त जैन—

1. अहिंसा इन्टरनेशनल द्वारा सम्मान (14-12-1986)		3	33—34
2. अमृतोत्सव (6-2-1987)			35
3. प्रहाप्रयाण पर श्रद्धासुमन		7	16—40

4. पुण्यतिथि (11-6-1990) 12 60
5. पुण्य स्मरण (6-2/11-6-1991) 14 58—59
6. 80वीं जन्म जयन्ती एवं चतुर्थ पुण्य तिथि (1992) 16-17 80—82, 84
7. 81वीं जन्म जयन्ती (6-2-1993) 19 84—85
8. 5वीं पुण्य तिथि (11-6-1993) 20 85—86
9. 82वीं जन्म जयन्ती (6-2-1994) 22 94—96
10. छठी पुण्य तिथि (11-6-1994) 23 48
11. 83वीं जन्म जयन्ति (6-2-1995) 25 77

विविध रिपोर्ट : श्री रमा कान्त जैन—

1. वीर शासन जयन्ती (30-7-1988) 7 44
2. लेखक-लेख अनुक्रमणिका शोधादर्श 1-10 10 88—93
3. जैन पत्र-पत्रिकाएं 10 71—73
4. जैन पत्र-पत्रिकाएं : कहां क्या ? 14 65—67
5. जैन पत्र-पत्रिकाएं 16-17 102—05
6. जैन धर्म, दर्शन और संस्कृति पर अंग्रेजी में प्रकाशित पुस्तकें 16—17 101—02
7. डॉ० शशि कान्त की षष्ठिपूर्ति (12-2-1992) 16-17 83—84
8. दूरदर्शन और आकाशवाणी, लखनऊ (मार्च-अप्रैल 1992) 16-17 85—86
9. श्री अजित प्रसाद जैन का अमृत महोत्सव (1-1-1994) 19 82—83

अन्य रिपोर्ट :

1. श्रद्धांजलि सभा (25-6-1988) -श्री नलिन कान्त जैन 7 7—12
2. प्राकृत एवं जैन विद्या सम्बन्धी शोध-प्रबन्धों की सूची -डॉ० कपूर चन्द जैन 12 52—56

सम्पादकीय : (निवेदन/प्रास्ताविक/टिप्पणी/रिपोर्ट) :

डॉ० ज्योति प्रसाद जैन :

1. अपनी बात 1 2
2. आचार्य अनन्त प्रसाद जैन 'लोकपाल' 2 27
3. प्रासंगिक 4 2
4. पं० कैलाश चन्द्र शास्त्री सिद्धान्ताचार्य 5 36

डॉ० शशि कान्त एवं श्री रमा कान्त जैन :

5.	निवेदन	7	2–03

डॉ० शशि कान्त :

6.	मील का पत्थर	10	87
7.	सम्पादकीय	12	4—05
8.	—तदैव—	16-17	5—06
9.	उत्तर प्रदेश जैन विद्या शोध संस्थान	16-17	76—79
10.	आभार	18	82
11.	टिप्पणी : तिरुकुरल पर	19	66
12.	प्राकृत एवं जैन विद्या की शोध में लखनऊ विश्वविद्यालय का अवदान	19	86—87
13.	दि. 22-9-1994 का कार्यवृत्त	24	52
14.	टिप्पणी : जैन धर्म के स्वतन्त्र अस्तित्व पर	25	32—33
15.	पुनरावलोकन	25	97-100

Extracts from the Jaina Gazette :

Jan.-Feb. 1905 : Editorial Notes (J. L. Jaini)		14	41—48
May 1905 :	—do—	15	54—57
May 1905 : Cruelty to Animals		16-17	61—63, 69
Oct. 1905 : A Mahomedan estimate of a Jaina layman		18	65—66

पद्य रचनायें : रचनाकार : शीर्षक—

डॉ० ज्योति प्रसाद जैन :

1.	जय त्रिभुवन स्तोत्र	5	44
2.	वीतराग स्वरूपं	23	76

पं० ताराचन्द्र 'प्रेमी' :

3.	इतिहास मर्मज्ञ – ज्योति प्रसाद	3	कवर 3

श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास' :

4.	भक्तामर स्तोत्र भाषानुवाद	10	29—36

5. डॉ० ज्योति प्रसाद श्रद्धांजलि	10	63
6. भगवान महावीर जन्म स्तुति	11	14
7. कल्याण मन्दिर स्तोत्र (हिन्दी अनुवाद)	12	36—43
8. उद्गार	16-17	82—84
9. काव्य सुमन	19	85
10. काव्याञ्जलि	20	85—86

11. समणसुत्तं (हिन्दी पद्यानुवाद) (1–139) :
16—17 64—68), 18 (69—72), 19 (78—81, 83), 20(79-81), 23(41-44), 24(58-61), 25(50-53)

श्री विहारी लाल :

12. Jaina Vairagya Shataka 18 (66—68), 19 (74—77), 20 (76—78), 23 (38—40)

श्रीमती बीना जिन्दल :

13. काव्य सुमन	7	14

श्रीमती मंजरी जैन :

14. काव्य सुमन	7	13

श्री मनोज कुमार जैन 'निर्लिप्त' :

15 'नए वर्ष' पर 'नव जीवन'	16-17	59—60

डॉ० महावीर प्रसाद जैन :

16. काव्य सुमन	7	15
17. काव्य सुमन	19	84
18. अभिमत	20	106—07
19. श्रद्धा सुमन	22	94—95

श्री रमा कान्त जैन :

20. काव्य सुमन	7	12

श्री राजीव कान्त जैन :

21. जल	9	39
22. दीप जला दो	10	74

डॉ० शशि कान्त :

23. क्या खोया, क्या पाया	16-17	83--84

डॉ० शील चन्द्र जैन	: 24. भाव तरंग	23	73—74
	25. उद्गार	25	89—90
श्रीमती शोफाली मित्तल	: 26. कलिकाल वन्दना	20	108
डॉ० (श्रीमती) सन्तोष जैन	: 27. मुनिवेशी कलियुग के	20	107

पुस्तक खण्ड— डॉ० ज्योति प्रसाद जैन :

1. आत्म दर्शन (कवि नाथूराम कृत)	1	1—12
2. कवि मनोहर दास विरचित 'ज्ञानचिन्तामणि'	2	1—12
3. कविवर आसाराम विरचित 'नेमिचन्द्रिका'	3 व 4	1—22
4. जैन-ज्योति : ऐतिहासिक व्यक्तिकोश	1 से 7	1-140

साहित्य सत्कार [समीक्षा] :

श्री अजित प्रसाद जैन : 8 (28—30), 9 (47—49), 10 (65—71), 11 (38-41), 12 (61-65), 13 (51-53), 14 (49-55), 15 (66-70), 18 (77-79), 19 (91-93), 20 [86-87], 21 [75-79], 22 [74—76], 23 [52], 24 [65—66], 25 [54—56]

डॉ० ज्योति प्रसाद जैन : 1 [28—32], 2 (32—40), 3 (26—32), 4 (30—35), 5 (37—43), 6 (29—34)

श्री रमा कान्त जैन : 8 (30—38), 15 (70-75), 16-17 (91), 23 (50—52), 24 (62-65), 25 (56-61)

डॉ० शशि कान्त : 10 (64—65), 13 (53—54), 14 (55—57), 15 (75—81), 16-17 (91—100), 18 (80—85), 19 (93—97), 20 [87—99], 21 [81—83], 22 [76—83], 23 [49—50], 25 (61—64)

डॉ० शील चन्द्र जैन : 21 (79—81)

विविध स्तम्भ : संकलन श्री रमा कान्त जैन—

1. श्री महावीर वचनामृत :

9 (3), 10 (4—5), 11 (2, 12), 12 (3), 13 (4), 14 (4), 15 (5), 16—17 (4), 21 (4)

2. आइये इन्हे भी स्मरण कर लें :

9 [53—54], 10 [62—63]

3. समाचार विविधा :

6 [23—24], 9 [54—57], 10 [77—82], 11 [45—49], 12 [67—70], 13 [56—59], 14 [59—64], 15 [92—95], 16—17 [86—90, 111—13], 18 [86—87], 19 [97—101], 20 [100—02], 21 [85—90], 22 [96—97], 23 [64—67], 24 [71—72], 25 [77—80]

4. अभिनन्दन—शोध की सफलता, आदि :

9 [50—53], 10 [75—76], 11 [41—44], 12 [59, 61, 66—67], 13 [54—56], 14 [67—69], 15 [88—92], 16—17 [108—10], 18 [87—89], 19 [88], 20 [99—100], 21 [84—85], 22 [97—98], 23 [63—64], 24 [70], 25 [76]

5. शोक संवेदन :

8 [39], 9 [58], 10 [83—84], 11 [47—48], 12 [70—71], 13 [60], 14 [69—71], 15 [95—97], 16—17 [114—16], 18 [89], 19 [101—02], 20 [103], 21 [90—91], 22 [98], 23 [67—68], 24 [72—74], 25 [80]

6 लेखक परिचय :

8 [कवर 3], 9 [कवर 3], 10 [94], 11 [कवर 3], 12 [कवर 3], 13 [कवर 3], 14 [कवर 3], 15 [कवर 3], 18 [95—96], 19 [105—06], 20 [109—10], 21 [96], 22 [104], 23 [75], 24 [80], 25 [iv]

पारखी पाठक :

1. आचार्य अनन्त प्रसाद जैन, गोरखपुर 2 (2)
2. डा. अनिल कुमार जैन, अंकलेश्वर 4 (36), 10 (85-86)
3. डा. अनुपम जैन, सारंगपुर 25 (89)

4.	डा. अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर	11 (49), 15 (97), 16-17 (122), 18(91-92), 22(100)
5.	पं. अमृत लाल शास्त्री, लाडनूं	15 (98), 19 (103), 23 (70), 24 (77-78), 25(84)
6.	श्री आदित्य जैन, लखनऊ	20 (108)
7.	डा. आर. सी. गुप्त, मेसरा, रांची	19 (102)
8.	डा. ए. एल. श्रीवास्तव, इलाहाबाद	21 (94-95), 23 (73)
9.	जस्टिस एम. एल. जैन, नई दिल्ली	22 (102), 25 (90-92)
10.	डा. एम. के. राय, छिन्दवाड़ा	21 (95)
11.	डा. एम. डी. वसन्तराज, मैसूर	21 (95), 25 (93-94)
12.	श्री एस. ए. भुवनेन्द्र कुमार, आन्टेरियो, कनाडा	22 (103)
13.	श्री एस. एन. मित्तल, नई दिल्ली	3 (2)
14.	डा. कन्छेदी लाल जैन, शहडोल	3 (2)
15.	डा. कपूर चन्द जैन, खतौली	16-17 (120), 18 (93)
16.	डा. कमल चन्द सोगाणी, उदयपुर/ जयपुर	2 (2)
17.	डा. केशव प्रसाद गुप्त, चरवा, इलाहाबाद	21 (92-93)
18.	श्री कैलाश चन्द्र जैन, सलावा, मेरठ	2 (2), 16-17 (121)
19.	पं. कैलाश चन्द्र जैन 'पंचरत्न' लखनऊ	22 (100)
20.	श्री कुन्दन लाल जैन, शाहदरा, दिल्ली	4 [36], 13 [60], 16-17 [118-19], 19 [102], 23 [72], 24 [78]
21.	प्रो. कृष्ण दत्त बाजपेयी, सागर	10 [85], 12 [72]
22.	डा० कृष्ण पाल त्रिपाठी, बलीपुर टाटा, इलाहाबाद	20 [104], 23 [71], 24 [74-75]
23.	प्रो. खुशाल चन्द्र गोरावाला, वाराणसी	20 [105-06], 23 [72]
24.	डा. गिरिजा शंकर शर्मा, बीकानेर	19 [104]
25.	श्रीमती गीता जैन, बम्बई	19 [104]

26. श्री जमना लाल जैन, सारनाथ, वाराणसी	3 [2], 16-17 [118], 21 [93]
27. डा. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, नई दिल्ली/मथुरा	20 [105]
28. श्री जालम सिंह मेड़तवाल, ब्यावर	2 [2], 10 [86]
29. ब्र. जिनेन्द्र कुमार जैन, जबलपुर	22 [102-03]
30. श्रीमती जैनमती जैन, वैशाली/आरा	22 [103-04]
31. डा. दरबारी लाल कोठिया, बीना (सागर)	19 [104], 20 [105], 23 [70]
32. डा. दामोदर शास्त्री, जयपुर	22 [100]
33. श्री दिग्दर्शन चरण जैन, नई दिल्ली	16-17 [124], 20 [105]
34. डा. निजामुद्दीन, बालैनी (मेरठ)	18 [90], 20 [105]
35. श्री निर्मल कुमार जैन, I.A.S. लखनऊ	19 [103]
36. डा. नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी, वाराणसी	9 [51], 12 [72], 15 [98], 18 [92], 19 [104], 21 [92], 22 [100], 25[88]
37. श्री नेमी चन्द जैन, कानपुर	19 [105]
38. पं. पद्म चन्द्र जैन शास्त्री, नई दिल्ली	10 [85], 25 [85]
39. श्री पन्ना लाल जैन, रीवा	22 [102]
40. डा. पन्ना लाल जैन साहित्याचार्य, सागर	2 [2]
41. पं. प्रकाश हितैषी शास्त्री, दिल्ली	4 [36]
42. श्री प्रताप चन्द्र जैन, आगरा	10 [85], 11 [49-50]
43. श्री प्रेम चन्द्र जैन, अहिंसा मन्दिर, नई दिल्ली	21 [91]
44. डा. प्रेम सुमन जैन, उदयपुर	3 [2], 16-17 [123]
45. डा. बारे लाल जैन, रीवा	23 [71]
46. पं. बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, हैदराबाद	4 [36]
47. श्री भगत राम जैन, दिल्ली	10 (86)
48. पं. भंवर लाल न्यायतीर्थ, जयपुर	3 (2)
49. श्री भंवर लाल नाहटा, कलकत्ता	16-17 (117-18)
50. डा. भाग चन्द्र जैन 'भागेन्दु', भोपाल	22 (101)

51. पं. भुवनेन्द्र कुमार जैन शास्त्री, सागर	22 (99)
52. श्री मदन मोहन वर्मा, ग्वालियर	21 (92)
53. श्री मनोज कुमार जैन 'निर्लिप्त', अलीगढ़	16-17 (123), 18 (90-91) 20 (106), 21 (93-94)
54. श्री महावीर प्रसाद जैन, नई दिल्ली	16-17 (117), 21 [95]
55. डा. महावीर प्रसाद जैन, लखनऊ	20 [106-07]
56. डा. महेन्द्र राजा जैन, इलाहाबाद	24 [76-77]
57. डा. महेन्द्र सागर प्रचाण्डिया, अलीगढ़	16-17 [124]
58. डा. [कु.] मीरा जैन, ग्वालियर	22 [92]
59 श्री मोती लाल 'विजय', कटनी	2 [2]
60. श्रीमती मृदुला गोयल, मेरठ	18 [92-93], 22 [99]
61. डा. रमेश चन्द्र जैन, बिजनौर	16-17 [124], 21 [92]
62. डा. रमेश चन्द्र शर्मा, कलकत्ता/ वाराणसी	2 [2], 10 [85]
63. श्री रत्न चन्द्र अग्रवाल, जयपुर	18 [92]
64. डा. रत्न लाल जैन, हांसी	18 [93], 19 [105], 20 [107], 22 [102]
65. श्री रत्नेश कुमार जैन, रांची	25 [88]
66. श्री राकेश पाण्डेय, दिल्ली	18 [94], 19 [103]
67. श्रीमती रामदुलारी जैन, कानपुर	22 [99], 24 [78]
68. श्री राजमल जैन, नई दिल्ली	21 [93]
69. श्री रामजीत जैन, लश्कर, ग्वालियर	10 [86], 12 [72], 18 [94], 20 [108]
70. प्रो. लक्ष्मी चन्द जैन, जबलपुर	16-17 [123], 21 [92]
71. डा. लाल चन्द्र जैन, वैशाली	21 [91], 22 [103-04]
72. श्री लाल चन्द्र जैन, टिकैत नगर	4 [36]
73. प्रा. सौ. लीलावती जैन, जलगाँव	18 [92], 23 [72], 25 [88]
74. डा. विनोद कुमार तिवारी, रोसड़ा (समस्तीपुर)	4 [36], 11 [50], 18 [90], 24 [75], 25 [94]
75. डा. विलास संगवे, कोल्हापुर	16-17 [121-22]

76. श्रीमती वीर बाला जैन, सहारनपुर 24 [74]
77. श्री वीरेन्द्र जैन पहाड़वाले, नजीबाबाद [बिजनौर] 24[77]
78. श्री वेद प्रकाश गर्ग, मुजफ्फरनगर 19 [105], 20 [104], 22 [100], 23[72-73], 25[85]
79. श्री शान्ति लाल के. शाह, सांगली 19 [104]
80. प्रो. शील चन्द्र जैन, छिन्दवाड़ा 18 [90], 22 [101], 23 [73-74], 25 [89-90]
81. श्रीमती शेफाली मित्तल, दिल्ली 20 [108]
82. साहू शैलेन्द्र कुमार जैन, खुर्जा 16-17[124], 21[93], 23[71]
83. डा. शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी, लखनऊ 11[50], 18[90], 22[99-100]
84. श्री श्रेणिक अन्नदाते, बम्बई 23 [70]
85. डा.[श्रीमती] सन्तोष जैन, सेरीटोस [यू.एस.ए.] 20[107]
86. पं. सत्यन्धर कुमार सेठी, उज्जैन 16-17[122-23],20[104]24[75]
87. श्री सी. के. नागराज राव, बंगलौर 15 [98], 20 [104]
88. श्रीमती सुधा जैन रानीवाला, खुर्जा 25 [89]
89. डा. सुधांशु कुमार जैन, लखनऊ 23 [71]
90. श्री सुबोध कुमार जैन, आरा 13[60],18[94],23[70],24[75-76]
91. श्री सुभाष जैन, नई दिल्ली 24 [75]
92. श्री सुमेर चन्द्र जैन, मुजफ्फरनगर 11 [49], 19 [102]
93. श्री सुरेश सरल, जबलपुर 22 [101-02]
94. डा. सुरेन्द्र कुमार आर्य, उज्जैन 23 [72]
95. डा. [कु.] सुषमा जैन, सागर 13 [60], 16-17 [116]
96. श्री हजारी मल बांठिया, कानपुर 15 [98], 20 [105], 23 [71]
97. डा. हरिश्चन्द्र जैन शास्त्री, मुरैना 25 [88]
98. श्री हुकम चन्द जैन, मेरठ शहर 25 [85, 88]
99. श्री हुकम चन्द महात्मा, उदयपुर 12 [72]
100. डा. हेमन्त कुमार जैन, वाराणसी 18 [93]
101. श्री ज्ञान चन्द्र खिन्दूका, जयपुर 21 [92]

नोट : ऊपर विवरण में जहाँ अंक के सम्मुख पृष्ठ संख्या नहीं दी गई है, वहाँ अंक के साथ कोष्ठक में पृष्ठ संख्या इंगित है।